सप्तगिरि

तिरुमल - तिरुपति देवस्थान की मास - पत्रिका

तिरुचानूर में विराजमान श्री पद्मावती देवी की अर्जित

ऊँजल सेवा
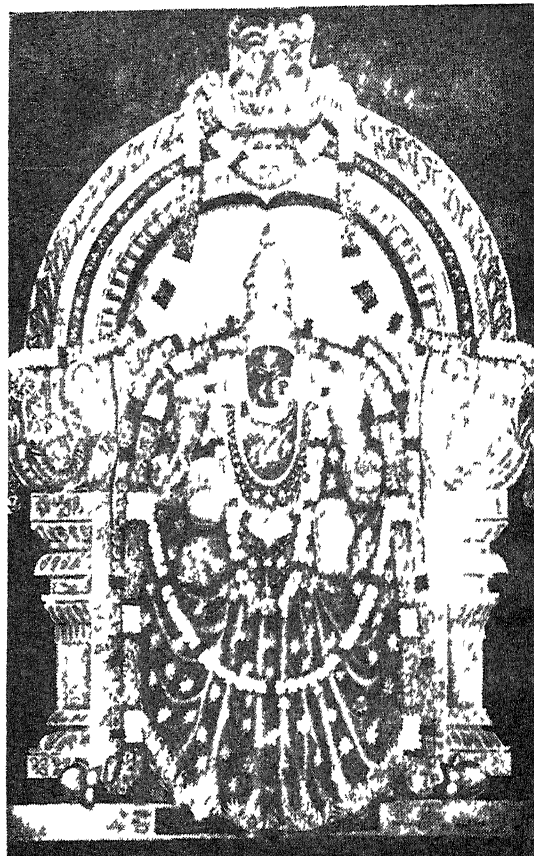
भक्तगण रु. १५० चुकाकर श्री पद्मावती देवी की ऊँजल सेवा में भाग ले सकते हैं।

केवल ४ व्यक्तियों केलिए ही प्रवेश मिलेगा।

उससे अधिक व्यक्ति इस सेवा में भाग लेना चाहें तो हर एक व्यक्ति को र २५–०० चुकाना पड़ेगा।

भक्तों से निवेदन है कि वे इस सदवकाश का सदुपयोग करें।

ति. ति. देवस्थान.
तिरुपति.
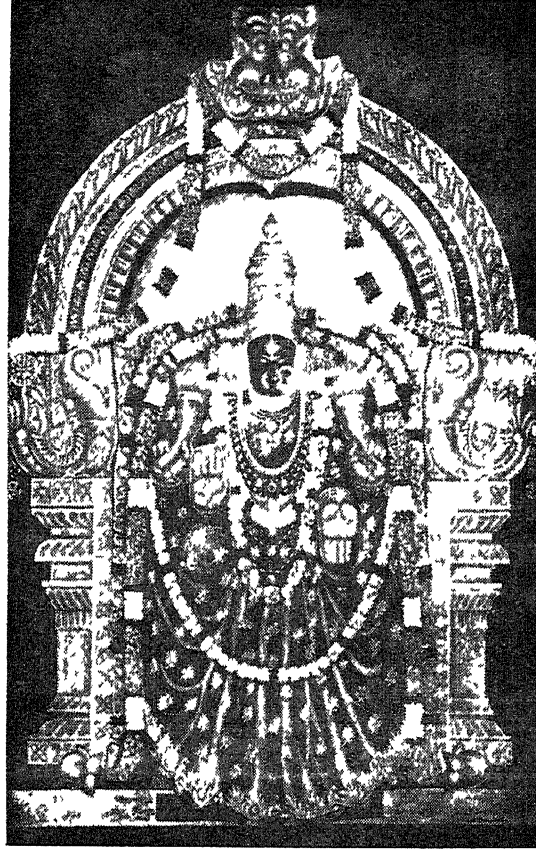
ईशानां जगतोऽस्य वेंकटपतेर्विष्णोः परां प्रेयसीं,

तद्वक्षस्थल नित्यवासरसिकां तत्क्षान्तिसंवार्धिनीम् ।

पद्मालङ्कृत पाणिपल्लव युगां पद्मासनस्थां श्रियं,

वात्सल्यादिगुणोज्ज्वलां भगवतीं वन्दे जगन्मातरम् ॥

श्रीवेङ्कटेश्वरस्वामीजी का मन्दिर, तिरुमल.

दैनिक पूजा एवं दर्शन का कार्यक्रम

शनि, रवि, सोम तथा मंगलवार

प्रात	3–00	से	3–30	तक	सुप्रभात
„	3–30	„	4–15	„	तोमालसेवा
„	4–15	„	4–30	„	**कोलुवु**
„	4–30	„	5–00	„	पहली अर्चना
„	5–00	„	5–30	„	पहली घटी तथा सात्तुमोरै
„	5–30	„	1–00	„	**सर्वदर्शन**
दोपहर	1–00	„	1–30	„	दूसरी अर्चना तथा दूसरी घटी
„	1–30	„	7–30	„	**सर्वदर्शन**
रात	7–30	„	8–30	„	रात का कैंकर्य
„	8–30	„	11–30	„	सर्वदर्शन
„	11–30				एकान्त सेवा

सहस्र कलशाभिषेक के कारण बुधवार

प्रात	3–00	से	3–30	तक	सुप्रभात
„	3–30	„	6–00	„	**विश्वरूप सर्वदर्शन**
„	6–00	„	6–15	„	शुद्धि
„	6–00	„	7–00	„	तोमाल मेवा (आर्जित)
„	7–00	„	7–30	„	कोलुवु तथा पचाग श्रवण
„	7–30	„	8–30	„	पहली अर्चना
„	8–30	„	9–00	„	पहली घटी
„	9–00	„	10–00	„	सहस्र कलशाभिषेक की तैयारियाँ
„	10–00	„	1–00	„	सहस्र कलशाभिषेक
दोपहर	1–00	„	2–00	„	दूसरी अर्चना, दूसरी घटी
„	2–00	„	8–00	„	**सर्वदर्शन**
रात	8–00	„	9–00	„	रात का कैंकर्य
„	9–00	„	11–00	„	सर्व दर्शन
„	11–00	„	11–30	„	**शुद्धि**
„	11–30				एकातसेवा

तिरुप्पावडा के कारण गुरुवार

प्रात:	3–00	से	3–30	तक	सुप्रभात
„	3–30	„	6–00	„	**विश्वरूप सर्वदर्शन**
„	6–00	„	6–15	„	शुद्धि इत्यादि
„	6–15	„	7–00	„	तोमाल सेवा (अर्जित)
„	7–00	„	7–30	„	कोलुवु, तथा पंचागश्रवण
„	7–30	„	8–30	„	पहली अर्चना
„	8–30	„	9–00	„	पहली घटी, बाली तथा सात्तुमोरै
„	9–00	„	11–00	„	दूसरी अर्चना, सालिपु
„	11–00	„	7–00	„	**सर्वदर्शन**
शाम	7–00	„	7–30	„	शुद्धि इत्यादि
„	7–30	„	9–00	„	पूलगि समर्पण
रात	9–00	„	11–30	„	पूलगि सेवा (अर्जित)
„	11–30	„	11–45	„	**शुद्धि**
„	11–45				एकात सेवा

अभिषेक के कारण शुक्रवार

प्रात	3–00	से	3–30	तक	सुप्रभात
„	3–30	„	5–00	„	**विश्वरूप सर्वदर्शन**
„	5–00	„	7–00	„	कैंकर्य
„	7–00	„	9–00	„	अभिषेक (अर्जित)
„	9–00	„	11–00	„	अभिषेक के बाद दर्शन (अर्जित)
„	11–00	„	12–30	„	समर्पण
दोपहार	12–30	„	2–00	„	तोमाल सेवा अर्चना, घंटी तथा सात्तुमोरै
„	2–00	„	8–00	„	**सर्वदर्शन**
रात	8–00	„	9–00	„	शुद्धि, रात का कैंकर्य तथा
„	9–00	„	11–00	„	सर्व दर्शन [घटी
„	11–00	„	10–30	„	**शुद्धि** इत्यादि
„	11–30				एकात सेवा

सूचना : १. उक्त कार्यक्रम किसी त्योहार तथा विशेष उत्सव दिनो के अवसर पर समयानुकूल बदल दिया जायगा।

सप्तगिरि
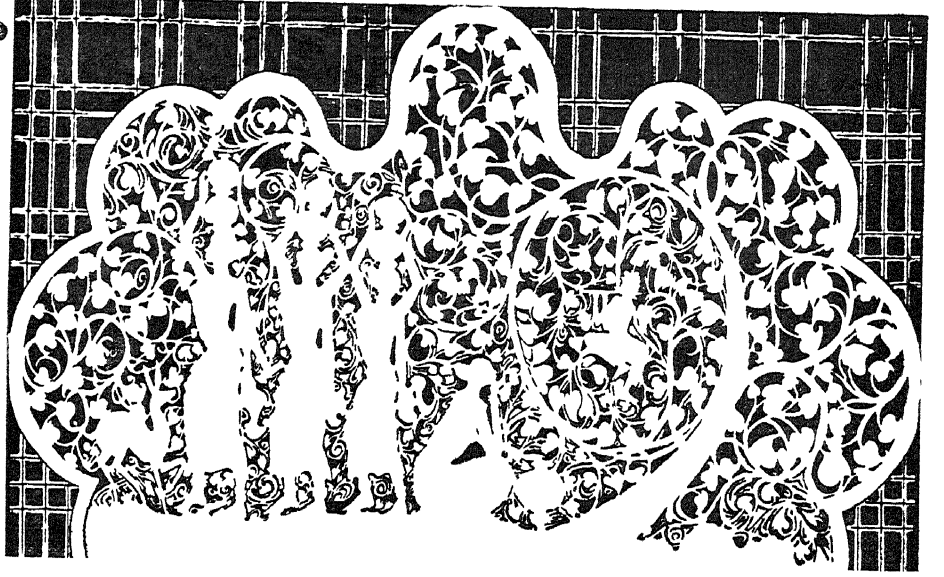
जनवरी १९७९ वर्ष ९ अंक ८

एक प्रति .... रु. ०–५०
वार्षिक चंदा .... रु. ६–००

गौरव सपादक
श्री पी. .वी आर. के. प्रसाद
आइ. ए यस्,
कार्यनिर्वहणाधिकारी, ति ति. दे. तिरुपति.
दूरवाणी २३२२

सपादक, प्रकाशक
के. सुब्बाराव, एम. ए.,
तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति
दूरवाणी २२५४

मुद्रक
एम्. विजयकुमाररेड्डी,
मनेजर, टी. टी. डी. प्रेस्, तिरुपति.
दूरवाणी २३४०.

मुखपृष्ठ: भगवान बालाजी, तिरुमल.

ससार के सभी देशों के सामने यदि हमारे देश का महत्वपूर्ण स्थान है तो उसका कारण केवल हमारी वैदिक सस्कृति ही है। पवित्र वेदों के पौरुषेयत्व तथा अपौरुषेयत्व पर अनेक वादविवाद प्रचलित है। लेकिन अनेक तार्किक पण्डित महोदय वेदों को अपौरुषेय ही मानते है।

यह निर्विवाद विषय है कि सकल चराचरों के प्राणदाता, देवाधिदेव सर्वेश्वर की महत्ता तथा उस से संबधित सारी ज्ञान सपत्ति की निधि वेद ही है। ऐसे वेदों का प्रकटित रूप नाद है। इसलिए कहा गया है कि वेद उस विराट पुरुष के निश्वास ही हैं। ये वेद अनादिकाल से गुरुमुखतः मौखिक रूप से शिष्यों को सिखाया जा रहे हैं और आज तक भी यह परंपरा विद्यमान है।

वेदों का परिरक्षण मुख्यतः सुस्वर उदात्त अनुदात्त वेदपठन पर ही निर्भर है। गुरुकुल सप्रदाय के बिना यह कार्य सभव नही हो सकता है। लेकिन इस सप्रदाय के स्वरूप स्वभाव से भी आधुनिक समाज परिचित नहीं है। यदि इस प्रकार का वातावरण और भी कुछ दिनों तक रहे तो समझिए कि वैदिक विज्ञान केवल लिपिबद्ध रूप में ही बच जायगा।

ति. ति. देवस्थान ने खूब सोच विचार कर आगामी पीढियों के कल्याण केलिए वेदों का परिरक्षण कार्यक्रम प्रारंभ किया। मृततुल्य कुछ वैदिक शाखाओं का विविध वैदिक पण्डितों के द्वारा टैपरिकार्डो में स्वरबद्ध कराया। इतना ही नही पारंपरिक अनुतश्रुत वेदों की रक्षा केलिए कुमार अध्ययन कार्यक्रम को भी स्वीकार किया। देवस्थान के ये सभी पवित्र कार्यक्रम सांसारिक बंधनो को ही सर्वस्व मानकर अज्ञान रूपी अध-कार में भूले भटके आधुनिक मानवों को ज्ञान-ज्योति प्रसारित कर रहे है।

दूसरी ओर देवस्थान के द्वारा वेदों का भावानुवाद कार्यक्रम भी शुरु हुआ है। लेकिन वैदिक वाङ्मय तथा संस्कृति के परिरक्षण केलिए केवल देवस्थान के प्रयत्न ही पर्याप्त नही होंगे। देश की सभी संस्थाओं को नियमित रूप से इस कार्यक्रम में संपूर्ण सह-योग देने की आवश्यकता है। मन्दिरों में वेद तथा पुराण पठन, अध्यापन, ग्रामीण स्तर से संस्कृत भाषा - बोधन इत्यादि कार्यक्रम, वेद परिरक्षण कार्यक्रम को सुचारु रूप से चलाने का अवकाश देंगे।

भगवान बालाजी से विनम्र प्रार्थना है कि वे इस वेद परिरक्षण कार्यक्रम को निर्बाध गति से चलायें तथा इस के द्वारा आशातीत सफलता प्रदान करें।

विना वेंकटेशं न नाथो न नाथः।
सदा वेंकटेशं स्मरामि स्मरामि ॥

पंचमहाभूत

(गताक से)

"क्षिति, जल, पावक, गगन समीरा
पंच तत्व यह अधम शरीरा।"

—रामायण, गोस्वामी तुलसीदास।

भौतिक विश्व का निर्माण उपरोक्त पंच महाभूतो के मेल से हुआ है या उसे यूँ कहें कि इस भौतिक विश्व मे इन पाँच महाभूतो की प्रचुरता पाई जाती है और कमो या बेश प्रत्येक जड-जंगम का निर्माण इन्ही पाँचो महाभूतो के सम्मिश्रण मे हुआ है। किसी मे एक तत्व की अधिकता है तो किसी मे दूसरे तत्व की। किन्तु, समस्त जड-जगम पदार्थ इन्ही तत्वो के कमोबेश सम्मिश्रण से बने है। जैसे बिच्छू या साँप मे अग्नि तत्व की अधिकता है तो वृक्ष या वनस्पति जगत में क्षिति या मिट्टी तत्व की प्रधानता है। मानव शरीर इन पाँच महाभूतो के सम्मिश्रण से बना है। किन्तु, इन पाँचो-भूतों (Elements) के इकट्ठा हो जाने पर भी जबतक प्राण तत्व का समावेश इन पचमहाभूतों द्वारा निर्मित शरीर मे नहीं होता तबतक जीवन का निर्माण नहीं होता। प्राण ही वह शक्ति है जो इन पंच महाभूतों से निर्मित शरीर को सचालित करती है। इस प्राण तत्व के निकल जाने पर शरीर मृतिकावत् रह जाता है। प्राण-तत्व के निकल जाने पर फिर पाँचों तत्व अपने अपने तत्व के भडार मे सविलीन हो जाते है।

'ईश्वर अश जीव अविनाशी'

—गोस्वामी तुलसीदास

यह प्राणतत्व ईश्वर का अंश है। जिस प्रकार बिजली के पावर हाउस से सब जगह अनेक बिजली के बल्ब जलते है, पंखे चलते है, किन्तु पावर हाउस से कनेक्शन कट जाने पर सभी जगह अन्धकार हो जाता है उसी प्रकार ईश्वर रूपी परम तत्व से समस्त जीवों के शरीरों में अलग अलग आत्मा कार्य करती है। प्राण-तत्व के शरीर से खीच जाने पर वह अपने परम तत्व ईश्वर रूपी पावर हाउस या भडार मे मिल जाता है।

इसतरह हम देखते है कि प्राण-तत्व के जरिए ही इन पंचमहाभूतो से निर्मित शरीर संचालित होता है।

पंचमहाभूतो में पहला तत्व 'क्षिति' है।

१) 'क्षिति' मिट्टी को कहते है। प्रत्येक भौतिक पदार्थ के निर्माण मे 'क्षिति' का विशेष रूप से हाथ है। जितने भी रूप या आकृति हम देखते है, सबो में मिट्टी तत्व की प्रधानता है।

मरने के पश्चात् शरीर की तीन ही गतियां होती है अर्थात् कृमि, विष्टा और भस्म। अगर मृत-शरीर को गाड दिया जाता है तो उसमें कीड़े पैदा हो जाते है और अन्त में सडगल कर वह मिट्टी में मिल जाता है। अगर मृत शरीर को यूँ ही छोड दिया जाता है तो माँसाहारी पशु-पक्षी उसे खाकर बिष्टा में परिणत कर देते है। पारसी में मृतक को अन्तिम संस्कार करने की यही रीति प्रचलित है। और शरीर को जला देने पर राख बनकर वह मिट्टी में मिल जाता है। इसतरह प्रत्येक स्थिति मे मृत-पार्थिव शरीर को मिट्टी मे मिलना ही है। किन्तु मृतक को जला देना सर्वोत्तम विधि है; क्योंकि इससे शरीर के पाँचों तत्व बहुत जल्द ही अपने अपने पंच महाभूतों मे संविलीन (absorbe) हो जाते है।

साहित्यरत्न श्री अर्जुनशरण प्रसाद, एम ए.,
चक्रधरपुर.

Ah, make the most of what we yet
may spend
Before we too into the Dust Descend,
Dust in to dust, and under dust, to
lie,
Sans Wine, Sans Song, Sans Singer
and Sans End!
—Rubaiyat of Omar Khayyam

"अरे, अब भी जो कुछ है शेष,
भोग वह सकते हम स्वच्छंद,

राख में मिल जाने के पूर्व
न क्यो कर लें जी भर आनंद;

गड़ेंगे जब हम होकर राख
राख मे, तब फिर कहाँ वसंत,

कहाँ स्वरकार, सुरा संगीत,
कहा इस सूनेपन का अत।"

—कविवर बच्चन

२) 'जल' :—पंचमहाभूतो मे दूसरा तत्व जल है। शरीर मे जल की प्रधानता है। रक्त या लहू जल का ही दूसरा रूप है। अगर जल शरीर की नस-नाडियो मे प्रवाहित नहीं होता रहे तो शरीर की प्रक्रिया तुरंत ही बंद हो जाती है। शरीर मे जल वही भूमिका अदा करती है जो कार मे पेट्रोल। पेट्रोल की सप्लाई बन्द हो जाने पर कार का चलना बन्द हो जाता है। नस-नाडियों में जल का प्रवाह बन्द हो जाने पर शरीर का कार्य ठप हो जाता है। शरीर मे खून का संचालन दिल के जरिए होता है जिस प्रकार कार मे पेट्रोल का सचालन 'एक्सलेटर' के जरिए होता रहता है। 'रज' और 'वीर्य' भी जल तत्व है जिसके मिलने से प्राणी की उत्पत्ति होती है। जनक के शुक्रकीट तथा जननी के डिम्बाणु के सयोग से मानव या अन्य प्राणियों का प्रजनन होता है। डिम्ब-कोष में शुक्र प्रविष्ट हो जाने के बाद जनक का कार्य पूर्ण हो जाता है। तत्पश्चात् निर्माण की समस्त क्रियाएँ मातृगर्भ में ही सम्पन्न होती है। मातृ-गर्भ से पिता ही पुत्र-रूप में पुनः उत्पन्न होता है। पुत्र को 'आत्मज' भी कहते हैं। यह

आर्ष वाक्य उसी सत्य को बतलाता है कि पुत्र पिता का दूसरा रूप है । The child is the father of the man.

पानी पीकर हम शरीर के जलतत्व की पूर्ति करते है । शरीर का शुद्धिकरण भी उसी जल-तत्व से होता रहता है अर्थात् पेशाब, पसीना इत्यादि के जरिए शरीर का विकार बाहर निकलता रहता है और खून साफ होता रहता है ।

पचमहाभूतो मे तीसरा तत्व 'पावक' अर्थात् 'आग' है । इसी अग्नि तत्व के जरिए शरीर को गर्मी मिलती है । शरीर मे अग्नि तत्व अगर न रहे तो शरीर नष्ट हो जाता है । मृतक का शरीर कितना ठण्डा होता है? पाचन क्रिया भी अग्नि-तत्व के माध्यम से ही होती है । स्त्री-पुरुष के समागम अर्थात् यौन-परितृप्ति (Sex Satisfaction) में इसी अग्नि, उष्मा या गर्मी की प्रधानता है। अग्नि का धर्म ज्वलन-शीलता है । इसी अग्नि-तत्व या गर्मी की प्रधानता के कारण नर-नारी का यौन-सम्पर्क होता है और रज-वीर्य के सम्पर्क से 'प्राण' तत्व का सचार मातृगभ मे होता है ।

शास्त्रों में ऐसा कहा गया है कि शिव ने अपने तीसरे नेत्र से कामदेव को जला दिया था। तबसे वह अदृश्य रूप मे लोगो को आक्रान्त करता रहता है । कामदेव का दूसरा नाम अनत भी है । यदि काम का अस्तित्व न रहे तो सृष्टि की प्रगति रुक जाय । प्रकृति अपना सर्वत्र विकास एव विस्तार चाहती है । विपरीत लिगो के मिलन से यौन परितृप्ति के माध्यम से Through the medium of sex satisfaction) सृष्टि अपना अनवरत रूप से विकास करती रहती है ।

शास्त्रो में अग्नि को परम पवित्र माना जाता है । इसे 'सर्वभुक्' भी कहा गया है अर्थात् यह सबकुछ खा जाती है, अपने में आत्मसात् कर लेती है । प्रकाश, गर्मी, उर्जा इसी अग्नि के अनेक रूप है । इस तरह अग्नि अपने को विभिन्न रूपो में प्रकट करती है । हिन्दुओ मे मृतक पार्थिव-शरीर को अन्त में इसी पवित्र अग्नि (Holy Fire) के सिपुर्द करदिया जाता है । प्रत्येक पवित्र कार्य में अग्नि जलाकर धूप से होम किया जाता है । विवाह में इसी अग्नितत्व को साक्षी रखकर पति-पत्नी प्रणयसूत्र में बंधते हैं और आमरण एक दूसरे के प्रति श्रद्धा विश्वास प्रेम, निष्ठा तथा एक दूसरे के प्रति सच्चा रहने

की प्रतिज्ञा करते हैं। पारसी लोग इसी पवित्र अग्नि की पूजा करते हैं। पावक का गुण 'तेज' है।

४) चौथा महाभूत 'गगन' याने आकाश है। आकाश को शून्य भी कहा जाता है। रिक्त स्थान को 'आकाश' कहते हैं। हम जब किसी वस्तु का निर्माण करते हैं तो 'आकाश' को सीमित दायरे में बाँध देते हैं। एक कुम्भकार जब घडे का निर्माण करता है तो आकाश को घडे के सीमित दायरे में बाँध देता है और घडे के अन्दर का आकाश 'घटाकाश' कहते हैं। यहाँ घडा कुछ जगह घेरता है। घडे के अन्दर भी आकाश है और बाहर भी आकाश है। जब घडा फुट जाता है तो 'घटाकाश' अपने परम-तत्व महाकाश में मिल जाता है। अंग्रेजी में इसके लिए 'Space' शब्द है। मनुष्य के तीन हाथ का लम्बा चौडा शरीर भी आकाशतत्व मे स्थित है। हम खडे होते हैं, बैठते हैं, सब जगह कुछ आकाश को घेरते हैं। हमारे शरीर के अन्दर भी आकाश है। शरीर नष्ट हो जाने पर आकाश या (Space) स्पेश अपने तत्व 'महा-काश' मे मिल जाता है।

'जल मे कुम्भ, कुम्भ में जल है
भीतर बाहर पानी,
फूटा कुम्भ जल जल ही समाना
यह तत् कथहि गियानी —कबीर

सकीर्ण अर्थ मे शरीर के अन्दर आकाश है बाहर आकाश है। शरीर आकाश मे स्थित है। शरीर के नाश होते हीं इसके आकाश तत्व महा काश मे मिलकर एकाकार हो जाते है। थिओं-सफी की पुस्तको में आकाश को 'ईथर' के रूप में माना गया है। ईथर सर्वव्यापी है।

५) पाँचवाँ महाभूत हवा' या समीर है। हवा की सार्वभौम व्यापकता से सभी परिचित है। अगर पांच मिनटो के लिए भी हवा रूक जाय तो पृथ्वी के जीवों का नाश हो जाय। हमलोग हवा के बदौलत ही जिन्दा है। हमारे शरीर में भी हवा है। सांस के जरिए शुद्ध हवा हम अपने शरीर के अन्दर पहुँचाते है और गन्दी हवा छोडते है। प्राणवायु के जरिए हम जिन्दा हैं। अपान वायु मलद्वार से बराबर बाहर निकलता रहता है। उकार लेने से भी अपान, वायु मुँह के मार्ग से बाहर निकलता है। शास्त्रो की राय है कि मनुष्य की आयु कुछ सांसों मे ही सीमित है। प्रकृति ने पहले ही से यह निर्धारित कर रखा है कि पृथ्वी पर मनुष्य कितनी बार सास लेगा। जिस दिन साँसो की सख्या पूरी हो जाती है, उसी दिन मनुष्य का पार्थिव शरीर नष्ट हो जाता है। अत बुद्धिमान लोग अपने सासो को व्यर्थ खर्च नहीं करते। ऐसे कार्य करने से अपने को वचित रखते है जिनमें सासो का व्यर्थ अपव्ययन हो। ऐसा देखा गया है कि जो प्राणी जितनी जल्दी जल्दी साँस लेता है उसकी आयु दूसरे प्राणी की अपेक्षा अल्प होती है।

प्राण किन्तु, इन पाचो महाभूतो के इकट्ठा हो जाने पर भी प्राण के बिना शरीर स्पंदित नहीं होता। मन जिसकी प्रेरणा से सचालित होता होता है, श्वांस-प्रश्वास प्रणाली जिसके द्वारा क्रियाशील रहती है, वह प्राण तत्व ही है। अंग्रेजी मे श्वास के अर्थ मे प्राण का प्रयोग होता है। स्वामी विवेकानन्द ने प्राण की विवेचना 'साइकिक फोर्स' अर्थात् मानसिक शक्ति के रूप में की है। वैदिक साहित्य मे प्राण के साथ वायु विशेषण भी लगा है जिसे 'प्राण-वायु' कहा गया है। प्राण का उद्गम केन्द्र सूर्य को माना गया है, क्यो कि पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति का श्रेय सूर्य किरणो को है। जिस किसी अग से प्राण निकल जाता है, वह सूख जाता है। 'प्राण' शब्द का अर्थ चेतना शक्ति होता है। जीवधारियों को 'प्राणी' कहते हैं। प्राण और जीवन दोनो एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। प्राणवायु पाच प्रकार का है--प्राण, अपान, व्यान, उदान एवं समान।

मनुष्य में रहनेवाली दस इन्द्रियां और ग्यारहवा मन यह सब प्राण है। इस जीवन-शक्ति की जितनी मात्रा जिसे मिल जाती है वह उतना ही अधिक प्राणवान कहा जाता है। प्राणायाम के जरिए बड़ी मात्रा में जीवन-शक्ति अपने भीतर धारण करके अत्यधिक सामर्थ्यवान बना जा सकता है।

प्राण आत्मा का गुण है। प्राण की उत्पत्ति आत्मा से होती है। समस्त जगत प्राण के स्पदन से नि सृत होता है। प्राण परमात्मा से परब्रह्म से निसृत होता है। कान में जो सुनने की शक्ति, मन में जो मनन करने की शक्ति वाणी में जो बोलने की शक्ति, प्राण में जो सचालन शक्ति, आँखो में जो देखने की शक्ति वह आत्मा ही जीवन का सचार करती है।

इस तरह हम देखते है कि 'आत्मा' पर-मात्मा का एक अविच्छिन्न अग है।

बूँद समानी समुद में जो कित हेरी जाय।'
—कबीरदास
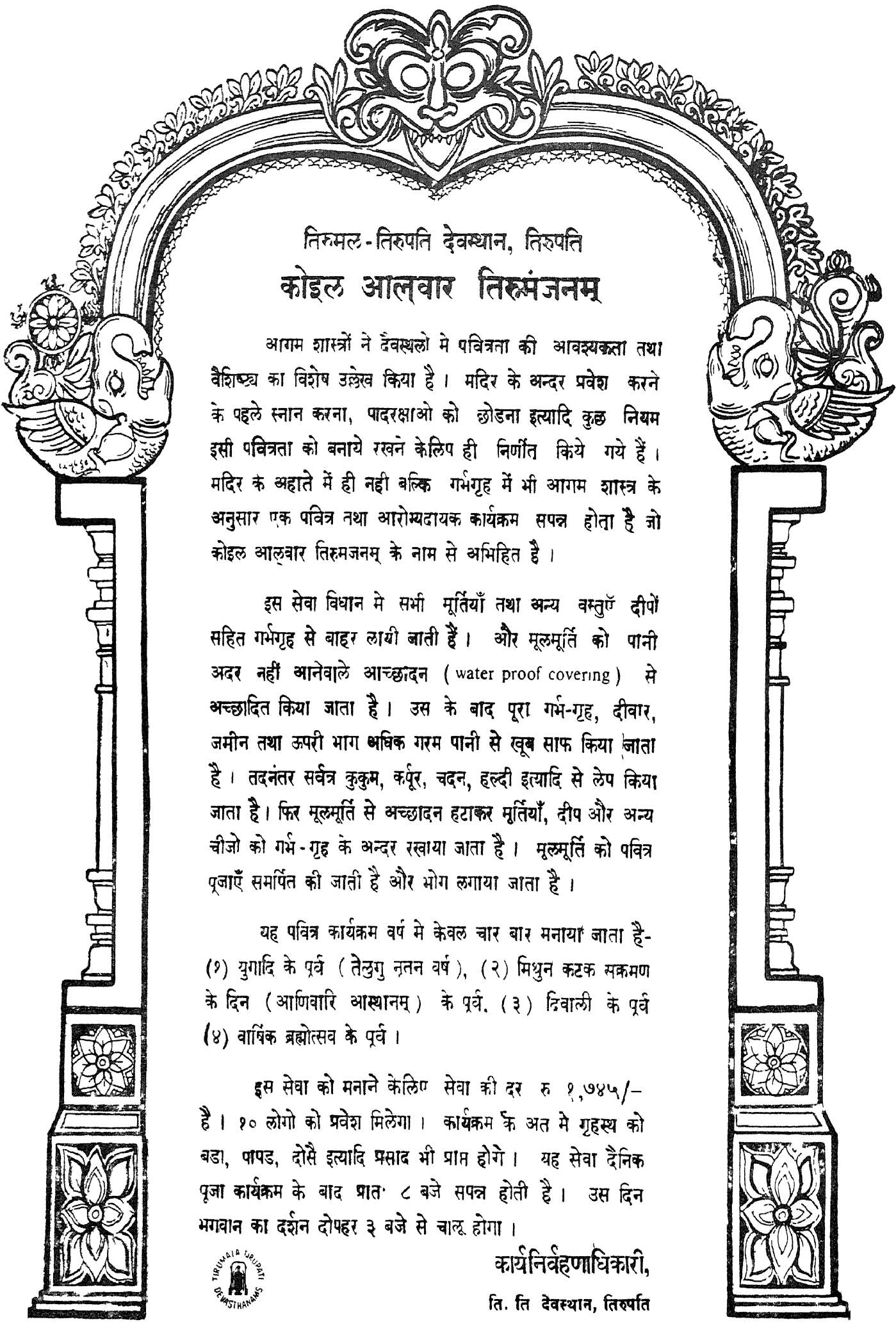
आत्मा परमात्मा रूपी भंडार में मिलकर स्वयं परमात्मा स्वरूप हो जाती है।

'ब्रह्म जानाति ब्रह्मैव भवति'

पार्वती परिणय—श्रीकालहस्ती स्थित ब्रह्म मटप का कुड्य चित्र

तिरुमल-तिरुपति देवस्थान, तिरुपति

कोइल आल्वार तिरुमंजनम्

आगम शास्त्रों ने देवस्थलो मे पवित्रता की आवश्यकता तथा वैशिष्ट्य का विशेष उल्लेख किया है। मदिर के अन्दर प्रवेश करने के पहले स्नान करना, पादरक्षाओ को छोडना इत्यादि कुछ नियम इसी पवित्रता को बनाये रखने केलिए ही निर्णीत किये गये हैं। मदिर के अहाते में ही नहीं बल्कि गर्भगृह में भी आगम शास्त्र के अनुसार एक पवित्र तथा आरोग्यदायक कार्यक्रम सपन्न होता है जो कोइल आल्वार तिरुमजनम् के नाम से अभिहित है।

इस सेवा विधान मे सभी मूर्तियाँ तथा अन्य वस्तुएँ दीपों सहित गर्भगृह से बाहर लायी जाती हैं। और मूलमूर्ति को पानी अदर नहीं आनेवाले आच्छादन (water proof covering) से अच्छादित किया जाता है। उस के बाद पूरा गर्भ-गृह, दीवार, जमीन तथा ऊपरी भाग अधिक गरम पानी से खूब साफ किया जाता है। तदनंतर सर्वत्र कुकुम, कर्पूर, चदन, हल्दी इत्यादि से लेप किया जाता है। फिर मूलमूर्ति से अच्छादन हटाकर मूर्तियाँ, दीप और अन्य चीजो को गर्भ-गृह के अन्दर रखाया जाता है। मूलमूर्ति को पवित्र पूजाएँ समर्पित की जाती है और भोग लगाया जाता है।

यह पवित्र कार्यक्रम वर्ष मे केवल चार बार मनाया जाता है- (१) युगादि के पूर्व (तेलुगु नूतन वर्ष), (२) मिथुन कटक सक्रमण के दिन (आणिवारि आस्थानम्) के पूर्व. (३) दिवाली के पूर्व (४) वार्षिक ब्रह्मोत्सव के पूर्व।

इस सेवा को मनाने केलिए सेवा की दर रु १,७४५/- है। १० लोगो को प्रवेश मिलेगा। कार्यक्रम के अत मे गृहस्थ को बडा, पापड, दोसै इत्यादि प्रसाद भी प्राप्त होगे। यह सेवा दैनिक पूजा कार्यक्रम के बाद प्रात: ८ बजे सपन्न होती है। उस दिन भगवान का दर्शन दोपहर ३ बजे से चालू होगा।

TIRUMALA TIRUPATI DEVASTHANAMS

कार्यनिर्वहणाधिकारी,

ति. ति देवस्थान, तिरुपति

श्री ज्ञानेश्वर का लघु चरित्र

श्री विट्ठल पन्त के तीन पत्र और एक कन्या थी। उनके नाम थे निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर, सोपान देव और मुक्ताबाई। श्रीविट्ठलपन्त ने अपने गुरू स्वामी श्री रामानन्दजी की आज्ञा से सन्यास लेनेके बाद पुन गृहस्थ धर्म स्वीकार कर लिया था। अत: ब्राह्मणो के आदेश से अपनी पत्नी श्री रुक्मिणी बाई के साथ उन्होने प्रायश्चित्त करने केलिए प्रयाग त्रिवेणी सगम में देह त्याग कर दिया। उस समय उनके चारो पुत्र बहुत छोटे थे। श्री विट्ठलपन्त गृहस्थ होकर भी अत्यन्त त्याग का ही जीवन व्यतीत करते थे। उनके देहत्याग के समय उनके घर में कोई सम्पत्ति नही थी। भिक्षा माँगकर ही उनके बालक अपना निर्वाह करते थे।

श्री ज्ञानेश्वर का जन्म भाद्र कृष्ण अष्टमी सं० १३३२ मे आलन्दी में हुआ था। उनकी पाच वर्ष की अवस्था में ही उनके माता-पिता ने देह त्याग कर दिया। इसके बाद आलन्दी के ब्राह्मणो ने कहा 'यदि पैठण के विद्वान तुम लोगो को यज्ञोपवीत का अधिकार मान लेंगे तो हम लोग भी उसे स्वीकार कर लेंगे।' ब्राह्मणों की सम्मति मानकर वे चारों बालक पैठण गये। पैठण पहुँचने पर वहाँ के विद्वान ब्राह्मणों की सभा हुई। उन लोगो ने कहा— 'इन बालको को शुद्धि केवल भगवान की अनन्य भक्ति करने से हो सकती है।'

ब्राह्मणों ने यज्ञोपवीत का अधिकार नहीं दिया। उससे भी इन लोगों को कोई दुःख नहीं हुआ। ब्राह्मणों के निर्णय को इन लोगो ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

ये चारों भाई-बहिन जन्म से ही परम भक्त ज्ञानी और अद्‌भुत योगसिद्ध थे। श्री ज्ञानेश्वर जी तो योग की जैसे मूर्ति ही थे। कुछ दुष्ट लोग इन बालकों के पीछे पडकर इन्हे तंग किया करते थे। पैठण में दुष्ट लोगों ने इनपर व्यग्य किये और अन्त में ज्ञानेश्वरजी से कहा—'यदि तुम सबमें एक आत्मा देखते हो तो भैंसे से वेदपाठ कराओ।' ज्ञानेश्वरजी जैसे ही भैंसे के ऊपर हाथ रक्खा कि उसके मुख से शुद्ध वेद-मन्त्र निकलने लगे।

श्राद्धके समय जब पैठण के ब्राह्मणों ने इनके यहा भोजन करना स्वीकार नहीं किया, तब ज्ञानेश्वरजी ने पितरो को प्रत्यक्ष बुलाकर उन्हे भोजन कराया। इस चमत्कार को देखकर पैठण के ब्राह्मणो ने इन्हे शुद्धिपत्र लिखकर दे दिया।

कुछ दिन पैठण रहकर सभी भाइयो के साथ ज्ञानेश्वरजी नेवासे स्थान मे आये। इसी स्थान मे उन्होने अपने बडे भाई श्री निवृत्तिनाथजी के आदेश मे गीता का ज्ञानेश्वरी भाष्य सुनाया। वे अपने बड़े भाई को गुरू मानते थे। ज्ञानेश्वरी सुनानेके समय उनकी अवस्था केवल पंद्रह वर्ष की थी।

उसके बाद ज्ञानेश्वरजी ने अपने सब भाई और बहिन मुक्तबाई के साथ तीर्थयात्रा प्रारम्भ की। इस यात्रा मे अनेक प्रसिद्ध सत उनके साथ हो गये। उज्जैन, प्रयाग, काशी, गया, वृन्दावन, द्वारिका आदि तीर्थों की यात्रा करके वे फिर पण्डरपुर लौट गये।

समस्त दक्षिण भारत में ज्ञानेश्वर महाराज पूजित होने लगे थे। उस समयके सभी प्रसिद्ध संत उनका बहुत सम्मान करते थे। कुल इक्कीस वर्ष की अवस्था में मार्गशीर्ष कृष्ण १३ सं० १३५३ को उन्होने जीवित समाधि ले ली। उसके एक वर्ष के भीतर ही सोपानदेव, मुक्ताबाई और निवृत्तिनाथजी भी इस लोक से परमधाम चले गये।

श्री दिगंबर नागनाथ शेरला
शोलापुर–२

श्रीज्ञानेश्वर की शिक्षा

* * * * *

सबमें आपक एक समान।
आत्मरूप से श्रीभगवान्॥

वही सत्य है सबका रूप।
वही एक त्रिभुवन का भूप॥

उसे छोडकर सत्य नहीं है।
जगमें कोई तथ्य नही है॥

नामरूपमय यह संसार।
देखो सोचो सदा असार॥

जब होगा यह अन्तर शुद्ध।
तब नर होगा सत्य प्रबुद्ध॥

राग-द्वेष मोहादिक चोर।
मरे हृदय में लख तम घोर॥

जगे वहाँ जब ज्ञान प्रकाश।
तब ये सब पायेंगे नाश॥

भोगों का हो मनसे त्याग।
तब प्रभु में होता अनुराग॥

तब मिलता है पावन ज्ञान।
ज्ञान मोक्षप्रद शुद्ध महान्॥ *

भक्त सिरोमणि सूरदास विप्रलंभ

सूरदास ने श्रृंगार के संयोग और विप्रलंभ पक्षो का जो चित्रण किया है उसकी समता और कोई नहीं कर सकता है —

भक्त सूरदास के समय भारत की परिस्थिति कष्टमय था। यवनो के आक्रमण से हिन्दू जनता के मन पर गहरी उदासी छा गयी थी। सर्वस्व गंवाकर भी हिन्दू जाति अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाए रखने की आशा नहीं छोड़ सकी थी। इससे उस ने अपनी सभ्यता, अपने चिर-संचित संस्कार आदि की रक्षा के लिए राम और कृष्ण का आश्रय लिया। उसकी भक्ति का श्रोत देश के कोने-कोने में बह निकला। उत्तर भारत में वल्लभाचार्य जी ने परम भाव की आनंद विधायनी कला का दर्शन करा कर नैराश्य में प्रेम का सचार कराया। दिव्य-प्रेम-संगीत की धारा में इस लोक का सुखद पक्ष निखर आया और जमती हुई उदासी या खिन्नता बह गयी।

जयदेव को देववाणी की स्निग्ध पीयूष-धारा के सूखने पर, अवकाश पाते ही मिथिला की अमराइयो में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुंजों के बीच फैल मुरझाये मन को सींचने लगी।

भक्त सूरदास ने भगवान का प्रेममय रूप ही लिया; इससे हृदय की कोमल वृत्तियो की ही आश्रय और आलंबन खड़े किये। इनकी रचना "गीति काव्य" है। जिस में मधुर-ध्वनि प्रवाह के बीच कुछ चुने हुए पदार्थो और व्यापारो की झलक भर काफी होती है। शक्ति, शील और सौंदर्य भगवान की इन तीन विभूतियो में से सूर ने केवल सौंदर्य तक ही अपने को रखा है जो प्रेम को आकर्षित करता है। श्रद्धा या महत्व बुद्धि को पुष्ट करने के लिए कृष्ण की शक्ति या लौकिक महत्व की प्रतिष्ठा में आग्रह न दिखाने के कारण ही सूरदास की उपासना सख्यभाव ही कही जाती है।

सूर का प्रेम-पक्ष लोक से न्यारा है। गोपियो के प्रेम की गंभीरता आगे चलकर उद्धव का ज्ञान गर्व मिटाती हुई दिखाई पड़ती है। सूरदास सच्चे प्रेम मार्ग के त्याग और पवित्रता को ज्ञान मार्ग के त्याग और पवित्रता के समकक्ष रखने में खूब समर्थ हुए है। उन्होंने साथ ही इस त्याग को

श्रीमती श्रीदेवी,
यादवाद्री, मण्डचा.

रागात्मिक वृत्ति द्वारा प्रेरित दिखाकर भक्ति मार्ग या प्रेम मार्ग की सुगमता भी प्रतिपादित की है।

बृंदावन के उसी सुखमय जीवन के हास-परिहास के बीच गोपियो के प्रेम का उदय होता है। गोपियाँ कृष्ण के दिन-दिन खिलते हुए सौंदर्य और मनोहर चेष्टाओ को देख मुग्ध होती है। हास-परिहास और छेड-छाड़ के साथ प्रेम-व्यापार का अत्यत स्वाभाविक दृश्य सूर ने दिखाया है। किसी का रूप चर्चा सुन, या अकस्मात किसी एक झलक पाकर हाय-हाय करते हुए इस प्रेम का आरभ नहीं हुआ है।

नित्य अपने बीच चलते फिरते, हँसते-बोलते वन में गाय चराते, देखते-देखते गोपियाँ कृष्ण में अनुरक्त होती है और कृष्ण गोपियो में। इस प्रेम को हम जीवनोत्सव के रूप में देखते हैं; सहसा उठ खड़े हुए तूफान या मानसिक विप्लव के रूप में नहीं, जिसमें अनेक प्रकार के प्रतिबधो और विघ्न-बाधाओ को पार करने की लंबी-चौड़ी कथा खड़ी होती है। जिस प्रकार के स्वच्छंद समाज के स्वप्न अंग्रेज कवि "शैली"

कृष्ण मेरी माता

प्राण - स्तन से ज्ञान पथ देगी मेरी माँ हि ।
कृष्ण स्याता पोषिका सचमुच मेरी माँ हि ॥

मुझे बिठाकर अंक में पसारती वह हाय ।
कथा सुनाती वह मुझे दिवस तथा ही रात ॥

सुखकर थी कोई कथा! कोई तो दुःखमूल ।
जयकर थी कोई कथा! कोई आपद - मूल ॥

मेरे मन में उदित औ हालत के अनुसार ।
बोलेगी माता कथा मै गह लूँगा सार ॥

मुझे दिखायेगी वही, विचित्र - नाना दृश्य ।
उन दृश्यों में शीतकर इन्दु एक भी दृश्य ॥

मुझे दिखायेगी वही, नभ में व्यापृत मेघ ।
तथा तरणि का रूप भी नभस्थ के निर्मेघ ॥

तारागण आकाश में चमक रहें आरात ।
उनको गिनने मै लगा यत्न विफल पर जात ॥

मौनी ही हैं अचल गिरि विहार करते साथ ।
सदैव तत्पर शैल में चमक रहें दिनरात ॥

सुन्दर नदियाँ अनगिनत दौड रही हैं वेगा ।
सब सरिताएँ सिन्धु मे जा गिरती अति वेग ॥

सागर फेनिल सहित नित करता तरंग गान ।
मानों माँ का "ओंकार' रव मुखरित हो, जान ॥

नाना घनिष्ठ विपिन में कुसुमित बहु परसून ।
उन पेडों में फल बडे शोभित तो थे दून ॥

मम माता मेरे लिये लीला वस्तु अनेक ।
लायी वे बहु रम्य थी, मेरा यही विवेक ॥

उसने मुझ को मधुरतम सरस सुनाया गान ।
स्वादु भक्ष्य भी दे दिया, दिया स्नेह का दान ॥

नारीकुल की तृप्ति भी करती थी वह नार ।
ज्वाला सुधाख्य वर सदा स्त्रीकुल का आधार ॥

सृजन किये मेरे लिये माँने विहग अनेक ।
रचित किये मेरे लिये जलधिज मीन अनेक ॥

इन जीवों को मम सदा माँ ने घनिष्ठ मित्र ।
सदा बनाया और भी दिया तोष सर्वत्र ॥

मेरे हसने केलिये माँ ने दिये अनन्त ।
ज्ञान सहित पटु शास्त्र औ दिये वेद हि अनन्त ॥

इतना तो ही था नही उसने और अनेक ।
मत खण्डन भी तो किये तथा अवेद अनेक ॥

माँ देगी इच्छित सभी मुझ को अपने आप ।
मुझे बनाकर पार्थ सम वह हर लेगी ताप ॥

मै तो उसकी कीर्ति यश गाऊँगा दिन रात ।
वह मुझ को संपूर्ण यश, दे देगी दिन रात ॥

(क्रमशः)

श्री टी. ई. एस. राघवन्, मद्रास.

ने देखा करते थे उसी प्रकार का समाज 'सूर' ने चित्रित किया ।

सूर के प्रेम की उत्पत्ति रूप लिप्सा और साहचर्य दोनो का योग है । गोपियो ने उद्धव से साफ कहा है —

"लरिकाई को प्रेम कहौ, अलि कैसे छूटे ।"

यह रूप का आकर्षण बाल्यावस्था से ही आरंभ हो जाता है । इस खेल ही खेल में इतनी बड़ी बात पैदा हो गयी है, जिसे प्रेम कहते है । प्रेम का आरंभ उभय पक्ष में सम है । लेकिन आगे चलकर कृष्ण के मथुरा चले जाने पर उस में कुछ विषमता दिखाई पडती है । कृष्ण यद्यपि गोपियो को भूले नहीं है, उद्धव से उसका वृत्तात सुन आँखो में आँसू भर लेते है ।

गोपियो की वियोग दशाओं का न जाने कितनी मानसिक दशाओ का सचार प्रतिबिंबित है । कौन गिन सकता है ? संयोग - विप्रलंभ दो अग होने से शृगार की व्यापकता बहुत अधिक है । इसी से वह रस राज कहलाता है । कृष्ण के चले जाने पर भी सायं - प्रभात उसी प्रकार होते है, पर "मदन गोपाल बिना या तन की सबै बात बदली ।" पहले व्रज में सायंकाल जो मनोहर दृश्य देखने में आया करता था वह अब बाहर नहीं दिखाई पड़ता; किंतु मन से उसकी स्मृति नहीं जाती —

"एहि बेरियो बनते ब्रज आवते
दूरहि ते वह बेनु अधर धारी बारंबार
बजावते ।"

कृष्ण के मुरली बजाने की ध्वनि सुनकर गोपिया गृहकार्य जैसे के तैसे छोड़कर द्वार पर आती थीं । उसके स्मरण से दुखी है । संयोग के

(शेष पृष्ठ 30 पर)

तिरुमल–यात्रियों को सूचनाएं

कलियुगवरद भगवान बालाजी ससार के कोने कोने से अगणित भक्तों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। हर रोज हजारों भक्त कलियुगवैकुण्ठ तिरुमल का दर्शन कर पुनीत होते हैं। तिरुपति तथा तिरुमल पहुचनेवाले इन असख्य भक्तगणों की सुविधा (यातायात, आवास, बालाजी का दर्शन इत्यादि) केलिए ति ति. देवस्थान उत्तम प्रबन्ध कर रहा है। इन सुविधाओं के अतिरिक्त यात्रियों के भोजन की समस्या की ओर भी ध्यान दिया जा रहा है। देवस्थान की ओर से भोजनशालाओं की व्यवस्था तो है ही है उसके अतिरिक्त तिरुमल पर अन्य भोजनशालाएं भी हैं जिन मे भोजन पदार्थों की दरे ति ति. देवस्थान के द्वारा नियत्रित की जाती हैं। अतएव यात्रियों से निवेदन है कि वे इन भोजन सुविधाओं का उपयोग करें।

तिरुमल पर भोजन सुविधाए

ति. ति. देवस्थान का अतिथि गृह

जलपान	(समय)	प्रातः ६ बजे से	९ बजे तक
		दोपहर ३ ,,	शाम ६ ,,
भोजन	,,	प्रातः ११ ,,	दोपहर २ ,,
		रात ७ ,,	रात ९ ,,

यहा पर मिठाई, नमकीन, चाय, काफी इत्यादि पदार्थ उपलब्ध है।

भोजन (full) रु. ३–००

जो लोग यहां से भोजन अथवा जलपान प्राप्त करना चाहते है उनको नियमित समय के तीन घंटे के पूर्व ही आर्डर (order) देना चाहिए।

काफी बोर्ड (कल्याणकट्टा के पास)

यहां पर केवल जलपान प्राप्त कर सकते है।
समय – प्रातः ५ बजे से रात १० बजे तक

काफी बोर्ड (क्यू शेड्स के पास)

यहां पर दहीभात, हल्दीभात तथा शीत पेय प्राप्त होते है।
समय प्रातः ५ बजे से रात १० बजे तक

टी बोर्ड (ए. टी. काटेज के पास)

यहां पर चाय तथा बिस्कुट प्राप्त होते है।
समय : प्रातः ५ बजे से रात ९ बजे तक

अन्नपूर्णा भोजनालय

यहां पर अनेकविध मिठाई, नमकीन आइस क्रीम, शीत तथा गरम पेय प्राप्त होते है।
(समय) प्रात : ५ बजे से रात १० बजे तक

भोजन समय – प्रात : ९ बजे से शाम ३ बजे तक
तथा
शाम ६ बजे से रात १० बजे तक

भोजन (थाली)	रु १–७५
अतिरिक्त प्लेट भात	रु. ०–६०
भोजन (full)	रु. ३–००

वुडलॉंड्स (ति ति.दे के अतिथिगृह के पास)

यहा पर जलपान, भोजन, शीत तथा गरम पेय प्राप्त होते है।

जलपान	(समय)	प्रातः ६ बजे से रात १० बजे तक
भोजन	,,	प्रातः ११ बजे से दोपहर २–३० बजे तक

मद्रास भोजन	रु. ४–००
उत्तर भारतीय भोजन	रु. ६–००
प्लेट भोजन	रु. १–७५

तिरुपति में देवस्थान का भोजनालय

ति. ति देवस्थान का भोजनालय (पहली धर्मशाला)
समय प्रातः ५ बजे से रात ९ बजे तक

यहां पर जलपान, आम्प्रो बिस्कुट तथा शीत और गरम पेय प्राप्त होते है।

ति. ति. देवस्थान का भोजनालय (दूसरी धर्मशाला)

यहा पर जलपान, भोजन, शीत तथा गरम पेय प्राप्त होते है।

जलपान	(समय)	प्रातः ५ बजे से प्रातः ९–३० बजे तक
		दोपहर २–३० ,, शाम ६ बजे तक
भोजन	,,	प्रातः १०–३० ,, दोपहर २ बजे तक
		६–३० ,, रात

प्लेट भोजन	रु. १–५०
अतिरिक्त भात (३५० ग्राम)	रु. १–००
दही	रु. ०–४०

ब्रह्म वित् आप्नोति परं

श्री पिडपर्ति वेंकट रामशास्त्री
कोत्तपेटा

ब्रह्मज्ञानी परम पदार्थ को प्राप्त करता है।

इस उक्ति में चार बाते है :– ब्रह्म उसका ज्ञान, परम पदार्थ, और उसकी प्राप्ति। क्रमश इन चार बातों और उनके सम्मिलित आशय पर विचार करें।

"ब्रह्म" के सबध में जो उक्तियाँ कही गई है, उनसे उपनिषद् भरे है। उदाहरण के लिए "आकाश शरीर ब्रह्मा, आनदो ब्रह्मेति व्यजानात्" इत्यादि कई उक्तियाँ ले सकते है। अन में हमारे ऋषि मूर्तियो ने कहा "सर्व खलु इद ब्रह्म" और सर्व स्वरूप ब्रह्म की उपासना की कई विधियो का प्रणयन किया है। ब्रह्म को भगवान, वासुदेव, कृष्ण आदि कई नाम भी दिए गए है, और उन उन नामो के द्वारा रूपो की निष्पत्ति एवं तद्द्वारा उपासना का विधान किया गया है, और तत्सबधी अनेको सप्रदाय उत्पन्न हुए है। विचारक के मन मे यह शका उठना स्वाभाविक है कि उपनिषदो मे "ब्रह्म" शब्द प्रयोग क्यो किया गया है, जब कि भगवान के कई नाम दिये जा सकते है, और दिए भी गए है।

आचार्य शकर स्पष्ट करते है, कि जो सब से बडा है, वह ब्रह्म है "बृहत्तम त्वात् ब्रह्म"।

हम आँखो से देखते है, अथवा अन्य इन्द्रियो के द्वारा समझ पाते है, कि पृथ्वी हम सब से बडी है, क्यो कि वह हम सब को आश्रय देती है। यह भी जान पाते है, कि आकाश हमारी पृथ्वी से भी बडा है, क्यो कि इस महान आकाश मे पृथ्वी, पृथ्वी जैसे और अनेक ग्रहो के परिवार अपनी अपनी कक्ष्याओ में भ्रमण करते है। यदि यह कहे, कि पृथ्वी के अनुपात मे हम जितने छोटे है, यदि आकाश के अनुपात मे नक्षत्र उतने छोटे है, तो अत्युक्ति नहीं हो सकती। इतना विचार करने पर यह भी हमारी विचार वीथि मे आयेगा, कि इस समस्त चराचर स्पष्ट आकाश का आश्रय भी कोई हो सकता है। उसका भी हो सकता है, और उसका भी न तो वह कौन है। वह तो निस्सदेह इन सब से बडा है। वह कोई बृहत्तम पदार्थ है। इसीलिए उसको अन्य कोई काम नहीं दे, और ब्रह्म कहे, तो हम कोई अनुचित शब्द का प्रयोग नहीं करते। उपनिषदो में प्रयुक्त ब्रह्म शब्द के अर्थ का ज्ञान प्राप्त करने पर कोई भी हमारे पूर्वजो पर यह आक्षेप नहीं लगाएगा, कि हम ने भगवान को नाम नहीं दिया। हम कौन है जो भगवान को नाम दें। हम नाम उसका दे सकते है, जो हमारे पश्चात् जन्म लेता है। हमारे पूर्व जो जन्म लेता है, उसको नाम देने की सुविधा हमारे हाथ में नहीं रहती उस से हम किसी न किसी प्रकार का सबध स्थापित करते है। अथवा हमारे पूर्वजो ने जिस नाम से उसकी अभिव्यक्ति की है, उसी का व्यवहार हम करते है। इस दृष्टि से हम सोचें, तो प्रतीत होगा, कि न तो हम ने भगवान को ब्रह्म का नाम दिया, और न हमारे पूर्वजो ने। केवल एक गुण - सर्व श्रेष्ठता - अथवा सर्वोत्तमता- के आधार पर अपनी भाषा की एक धातु की सहायता से सज्ञा का गठन करके उस अनत शक्तिमान परमात्मा का व्यवहार किया है। यदि आप कहे, भगवान के सभी नाम उनकी विशेषता सूचित करनेवाले मात्र है, मै उसका विरोध नही करता।

अच्छा, हम मानते है, जो सब से रूप, गुण - आदि विशेषताओ के कारण बडा है, वह ब्रह्म है। शायद किसी ने उसका चर्म चक्षु से उसे नही देखा होगा, नही सुना होगा, नही कहा होगा, परतु विश्वास ही किया होगा, कि वह है। उसके अस्तित्व की सभावना के कारण तो स्पष्ट ही है, कि किसी न किसी महान् के पर्यवेक्षण के अभाव में इस विशाल विश्व का संचालन इस दक्षता के साथ नही हो सकता। क्योकि हम देखते ही है, कि छोटे से परिवार में ही अल्पावधि में ही अनेक अव्यवस्थाएँ होती है। इस विश्व विषयक महान व्यवस्था के व्यवस्थापक का अस्तित्व स्वीकार करने मे ही हम अपने को ज्ञानी मान सकते है। परतु प्रश्न तो यह है, उस के ज्ञान की आवश्यकता क्या है? वह कहीं न कही है, और अपनी व्यवस्था चलाता है। हम उस को जाने, या न जानें, वह अपनी व्यवस्था में कोई लोप नहीं आने देता, क्यो कि वह तो मान्यता प्राप्त सचालक है।

उत्तर के लिए तनिक लोक व्यवहार पर ध्यान दें।

हमारे राष्ट्र के राष्ट्रपति है। जो दिल्ली में है, और सारे राष्ट्र की शासन - व्यवस्था करते है। आप उन्हे जाने या न जानें, वे अपना शासन चक्र चलाते ही है। आप ज्ञान अथवा अज्ञान रूप से जो भी करे, उसका प्रतिफल आप को प्राप्त ही होता है। इस तथ्य से परिचित होकर भी क्या आप हमारे राष्ट्रपति का ज्ञान प्राप्त करने का यत्न नहीं करते? राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति यथाशक्ति राष्ट्रपति एव उन के द्वारा संचालित होनेवाले शासन का परिज्ञान प्राप्त करने को इच्छुक ही नहीं, उत्सुक भी होता है। इसका कारण क्या है? आप अपने को राष्ट्र का अभिन्न अग समझते है, और उसी नाते सपूर्ण राष्ट्र के तथ्यो का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। राष्ट्र के तथ्यो का पूर्ण ज्ञान राष्ट्रपति एव उन की व्यवस्था के ज्ञान के आभाव में नही हो सकता। उसी प्रकार हमें विश्व व्यवस्था के सचालक एव उसके द्वारा रचित व्यवस्था का परिज्ञान प्राप्त करना है। अन्यथा हम अपने को विश्व व्यवस्था का अग नही समझ पाते। विश्व से असबद्ध ही समझ बैठते है। इस नासमझी के कारण हम कई अकार्य कर बैठते है, कई दुर्भाषाए बोलते है। कई प्रकार के कुविचार करते है।

राष्ट्र का व्यक्ति जब अपने को राष्ट्र से असबद्ध मानता है, तब उस को अनागरिक - असामाजिक कहते है। वह समाजद्रोही है, और दंड का भोगी है। तथैव विपुल विश्व से भिन्न अपने को जो मानता है, वह शाति नहीं प्राप्त कर सकता। विपुल विश्व एव व्यक्ति के सबध का ज्ञान जब जब हमें होता है, तभी हमारे आचार विचार परिमार्जित होते है।

राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रथम - प्रमुख नागरिक है। उसी प्रकार ब्रह्म विश्व का प्रमुख माना जाए तो असगति क्या है? आप यह दोष दिखा सकते है, कि राष्ट्रपति तो हम मे से एक व्यक्ति है, जो राजधानी मे रहते है और जिनका हम से विलक्षण व्यक्तित्व है। परंतु ब्रह्म न तो हम से भिन्न है, और न हम से दूर अन्यत्र कहीं रहता। इस शका को उपस्थित करते समय आप यह भूल जाते है, राष्ट्रपति भी हमारे जैसे व्यक्ति है और उपाधि वश विलक्षणता का व्यवहार होता है। उसी भांति ब्रह्म श्री सर्वव्यापी है। केवल उपाधिवश हमारे व्यवहार के अर्थ उसका नाम धाम आदि की परिकल्पना होती है।

दयामय राम

भवसागर में डूबे जन को
तारने आया हे राम! तू,
डूब गया तू भक्त जनो के
भक्ति सागर में, पावनतम।

नर के साथी नर हीं होते
मृग ही मृग के साथी बनते
बन्दर बना तो तेरा साथी
इससे बढकर आश्चर्य है क्या?

हमने देखा और सुना है
स्त्री ही जग में जन्म को देती
तेरे पैर ने एक ललना को
जन्म देकर कमाल किया।

मृग का शिकार खेलने लोग तो
वन में जाते कौतूहल से
तू तो गया था वन में राम!
शिकारी गृह का शिकार खेलने।

झूठे अन्न को खाने वाला
रोगी जरूर बनता है
शबरी के झूठे बेरों ने
दिया दया का रोग तुझे।

सुर देवता भू पर आते
रक्षा करने लोगों की
चर और अचर रक्षा पाने
एक वैकुठ को तेरे साथ।

तेरे अवतार से, हे राम!
वसुधा वसुदा हुई, अहो!
समता आई, वैर मिटा था
तेरे राज्य में चोर नहीं था।

मिलती मुक्ति सब को जगमें
मरन केबाद, चोरी से,
निर्धनता से, तेरे काल में
मुक्ति मिली सबको भूषर

रामराज्य में, दशरथ राम!
कोई चोर न रहता था
निर्धनता की चोरी करने,
पावनतम, तू तैवार था।

जगमे कोई तारीफ करता
अपने दुशमन की नही
युद्ध भूमि में रावण को देख
तूने उसकी तारी की।

कुछ तो सोचते, रामचन्द्र ने
सीता के लिए युद्ध किया
राक्षस जन्म से मुक्ति को देने
तूने रावण की हत्या की ।

के. यन्. वरदराजन्, यम्. ए. बि.इडि.,

यात्रियों से निवेदन

हिमालय की विभूतियों - बद्रीनाथ, केदारिनाथ, गंगोत्री तथा यमुनोत्री आदि पुण्यस्थलों-की यात्रा के अवसर पर कृपया

ति. ति. देवस्थान के

१. श्री वेंकटेश्वर स्वामी मन्दिर तथा

२. श्री चन्द्रमौलीश्वर स्वामी मन्दिर-हृषीकेश

के दर्शन कर कृतार्थ होवें।

यहां पर भक्तजनों केलिए मुफ्त धर्मशालाएं तथा सुविधाजनक (Furnished) आवास - सुविधा मिलेगी।

ब्रह्म के सर्वव्यापी स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने मे मेरे उद्देश्य में जनतत्र शासन से अधिक संगत उदाहरण उपस्थित नहीं किया जा सकता। हाँ, जो लोग अद्वैत भावना स्वीकार नहीं करते वे भी अपनी धारणा के अनुसार किसी न किसी शासन व्यवस्था के उदाहरण के द्वारा ब्रह्म की बृहत्ता का परिज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

कहा गया है, कि ब्रह्म के परिज्ञान से परम पदार्थ की प्राप्ति होती है। स्पष्ट है। वह परम पदार्थ और कोई नही है। ब्रह्म ही है। क्योकि श्रेष्ठता, उत्तमता, बृहत्ता, नित्यता आदि गुणो के आधार पर विचार करे तो वे सभी गुण जिस में है, वह ब्रह्म ही है, अन्य सभी पदार्थ अनित्य ही है। अतएव कहा गया है, ब्रह्मवित् आप्नोति परं।

इम उक्ति को यो भी कहा जा सकता है, और कहा गया है। ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति।

जो ब्रह्म को जानता है, वह ब्रह्म ही बनता है।

यह ब्रह्म ज्ञान से केवल ब्रह्म शब्द का अर्थ ज्ञान अपेक्षित नहीं है।

ब्रह्म की विशेषताओ के ज्ञान से - अर्थ ज्ञान से निष्पन्न भावना एव तद्वारा परिणत स्वभाव ब्रह्म-ज्ञान है, जो साधक, ज्ञानी, व भक्त ब्रह्म की विशेषताओ से परिचित होता है, ब्रह्म भावना से आप्लावित होता है, उस का अतर शुद्ध होता है। वह सकुचित भावनाओ का शिकार नही होता। उसका जीवन लक्ष्य वसुदेव कुटुम्ब के मात्र ही नही रहता। वह इस वसुधा की अव-धियो से परे होता है। इह लोक में रहते हुए वह पारलौकिक विचार - धारा की गगा में स्नान करता है। यहाँ पारलौकिक शब्द से मेरा आशय भी जान लें। आदि में कहा गया है, और पश्चात् स्पष्ट भी किया गया है फिर पर शब्द का अर्थ ब्रह्म ही है। अतः कोई यह समझने का छल न करे, कि हमारी सृष्टि से विश्व से भिन्न कोई व्यवस्था है, जिस में कही भगवान रहता है। पुराण आदि के पाठक मुझे क्षमा करे। कम से कम कुछ समय के लिए। जहाँ हम रहते है, वही ब्रह्म है। ब्रह्मा से समिष्टि से व्यष्टि अपने सबध की स्मृति प्राप्त करता है, मानो कोई खोई हुई चीज मिल गई हो। वह ब्रह्म सा व्यवहार करने लगता है। आत्मवत् सर्व भूतानि वः पश्चति सः पश्चति। सभी पदार्थों को ब्रह्म के रूप में जो देखता है वही यथार्थ में अपने नेत्रो का-नेत्रेंदिय का सच्चा ज्ञान-रखता है। अन्य सब अंधे है। इन अधो के कारण ही विश्व में छोटा बडा, धनी निर्धन आदि भावनाऐं उत्पन्न होते है। ईर्ष्या द्वेष आदि के मूल असमानता - माया का परदा जब तक फटता नहीं, तब तक हम अद्वैत परब्रह्म का ज्ञान नहीं करते। और न वैसा व्यवहार करते। ब्रह्म ज्ञान जितवा आवश्यक है। उस से अधिक ब्रह्म भाव, व ब्रह्म व्यवहार आवश्यक अपरिहार्य है। अतएव कहा गया है ब्रह्मवित् आप्नोति परं।

इस पर कोई नटखट ऐसे प्रश्न पूछेंगे, कि क्या जिस व्यक्ति को ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ है, क्या उस को जलाने से नहीं जलेगा। क्यो कि कहा भी गया है, ब्रह्म नित्य है।

इसका उत्तर यह ठीक हो सकता है, कि ब्रह्म का अश अग्नि है। फिर वह क्यों न जले। यदि न जले, तो समझना होगा, कि ब्रह्म ने अपने कर्तव्य का निर्वह ही नहीं किया, जो असंभव है। अतः ऐसे नटखट प्रश्नो से यहां मतलब नहीं है। ब्रह्म ज्ञान, ब्रह्म भावना, ब्रह्म व्यवहार आदि से तात्पर्य अपने संकुचित अर्थ मे उदारता, लोक संग्रह, आदि जीवन मूल्य मान ले तो हम सत्य के दर्शन करते है। लोक संग्रह मे समष्टि के साथ व्यष्टि भी निहित है। अत. कोई यह न मान बैठे व्यक्ति के हानि के द्वारा समाज को लाभ हो। व्यक्ति जब समाज का अंग है, तब व्यक्ति के हानि से समाज का लाभ कैसे होगा। जब समाज का छोटे से छोटा व्यक्ति भी लाभा-न्वित होता है, तभी समाज लाभान्वित व शांति समृद्ध होता है। ★

ब्रह्मोत्सव के अवसर पर श्री गोविन्दराजस्वामी जी का शेषवाहन
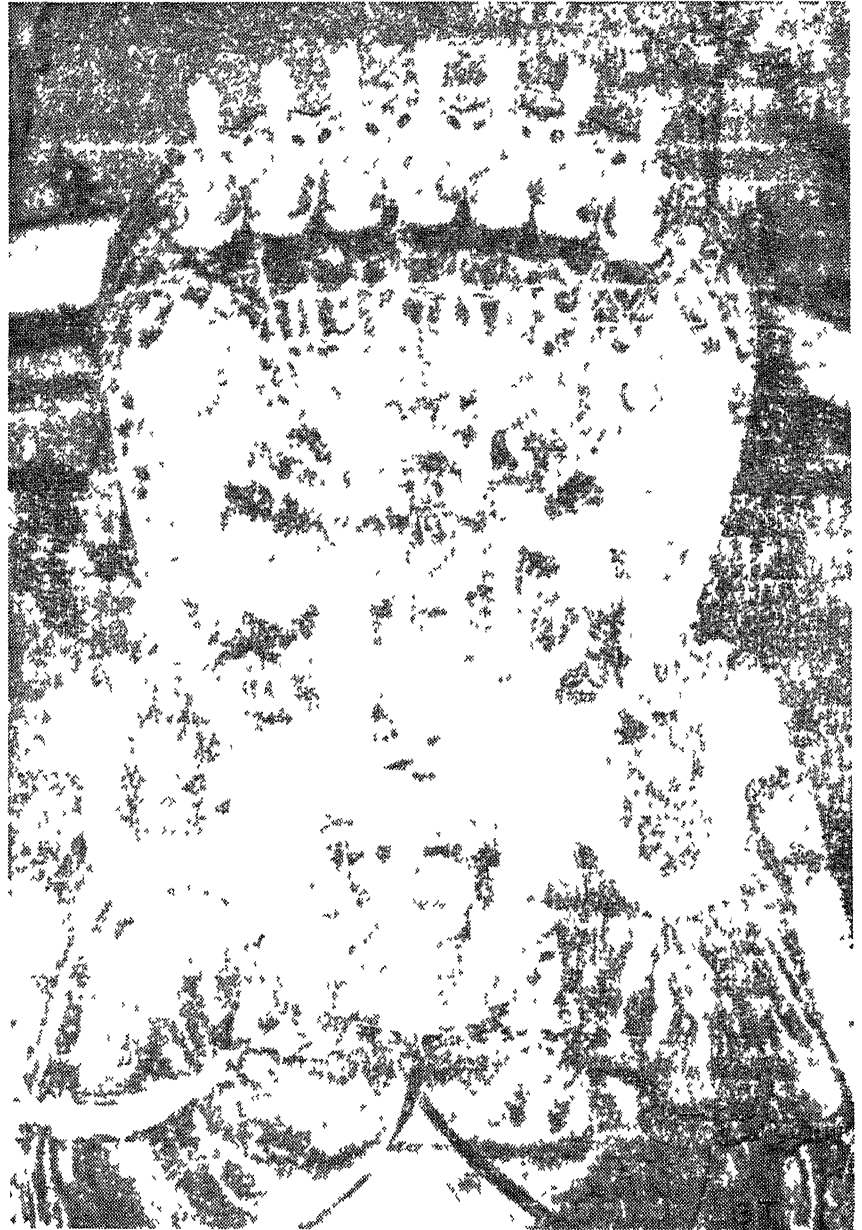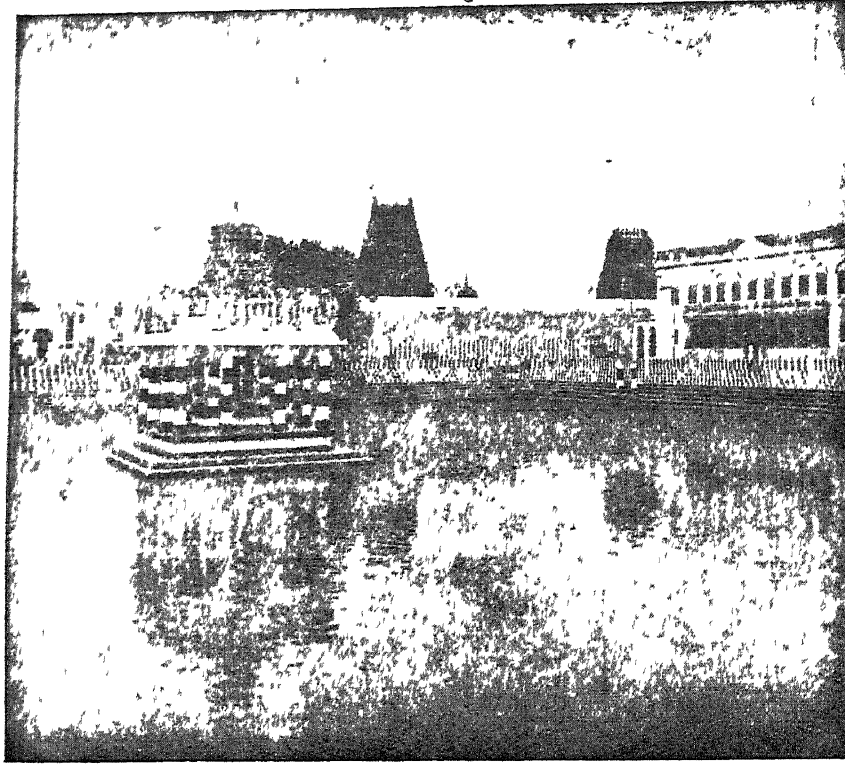
श्रीपद्मावती देवी का मंदिर, तिरुचानूर.

।। दैनिक कार्यक्रम ।।

प्रात	5–00	बजे से	5–30	बजे तक	..	सुप्रभात
,,	5–30	,,	6–00	,,		सहस्रनामार्चना
,,	6–00	,,	6–30	,,	....	पहली घंटी
,,	6–30	,,	9–00	,,		सर्वदर्शन
,,	9–00	,,	11–00	,,		अर्चना (अष्टोत्तर)
,,	11–00	,,	1–00	,,	..	सर्वदर्शन
मध्याह्न	1–00	,,	1–30	,,	..	दूसरी घंटी
,,	1–30	,,	4–00	,,		सर्वदर्शन
शाम	4–00	,,	6–00	,,		दूसरी अर्चना (अष्टोत्तर)
रात	6–00	,,	7–00	,,		सर्वदर्शन
,,	7–00	,,	7–30	,,	....	तीसरी घंटी
,,	7–30	,,	8–45	,,		सर्वदर्शन
,,	8–45	,,	9–00	,,		एकातसेवा ।

शुक्रवार के दिनों में

सुबः	11–00	,,	12–00	,,	.	सर्डलिपु
मध्याह्न	12–00	,,	1–00	,,	.	देवी का अभिषेक
,,	1–00	,,	2–00	,,	..	समर्पण तथा दूसरी घंटी

(१) सहस्रनामार्चन टिकेट की दर — रु. 6-40. एक टिकेट से चार व्यक्ति प्रवेश पा सकते हैं ।

(२) अष्टोत्तरनामार्चन टिकेट की दर — रु 1 – 15 एक टिकेट से चार व्यक्ति प्रवेश पा सकते हैं ।

(३) सर्वदर्शन के समय एक आरती टिकेट की दर — 0–40 पै । इस सूचना के द्वारा यात्रियों को बताया जाता है कि रु 13–12 से बढकर जो भेंट भगवान को समर्पण किया जाता है वह देवस्थान में पहुँच जाता है । इस तरह भेंटों को समर्पण करने की इच्छा रखने वाले आफीस में पैसा अदा करके रसीद भी पा सकते हैं ।

उपनिषद् में कल्याणमार्ग

डा० श्री उमारमण झा,
श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ,
जम्मूतवी

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में श्रेय और प्रेम इन दो वस्तुओं का प्राप्त होना जरूरी है। १) श्रेय का अर्थ होता है कल्याण और प्रेम का अर्थ होता है प्रियवस्तु।

प्रियवस्तुओं की प्राप्ति के लिए उपनिषद् ग्रन्थों में प्रमुखरूप से दो मार्ग बतलाये गये हैं। १) उपासनारूप मार्ग और २) कर्मरूप मार्ग। कर्म से पितृलोक की प्राप्ति और विद्या से देवलोक की प्राप्ति होती है। प्रियवस्तुओं में पुत्र की प्राप्ति, धन, यश की प्रप्ति तथा रोगनिवृत्तिपूर्वक आयुरारोग्य की प्राप्ति, कामिनीसुख, कामनापूर्ति आदि इहलौकिक सुख प्राप्त होते हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद् (१.५.१.६.) में अच्छी सन्तानों की प्राप्ति के लिए पुत्रमन्थ नामक कर्म का विधान बतलाया गया है। छन्दोग्योपनिषद् (१.५.१८.) में पुत्र प्राप्ति के लिए प्रणव एवं उद्‌गीथ की एकता बनकर प्राण एवं रस्मियों के भेदरूप गुण से युक्ता दृष्टि से ओंकार की उपासना का विधान कहा गया है। प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है कि प्रजापति व्रत से अच्छी कन्याएं एवं अच्छे पुत्र मिल सकते हैं। कौषीतकि में कहा गया है कि चन्द्रमा की उपासना करने से मातापिता को पुत्र शोक नहीं हो सकता है। मिथिला में अभी भी पुत्रों के दीर्घायु के लिए चौथे-चन्द्र और छठे दिन चन्द्रमा की पूजा अवश्य ही लोग करते हैं।

धन, यश तथा तेज की प्राप्ति के लिए कौषीताकि (२.६.) में कहा गया है— एवं विद्वान् सर्वेषां भूतानां श्रीमत्तमो, यशस्वितमस्तोजस्वितमो भवती।

अर्थात् ब्रह्मरूप में उपासना करने से श्रीसम्पन्न, यशस्वी तथा तेजस्वी होना निश्चय है। छान्दोग्योपनिषत् (३.१३.१.४) में कहा गया है कि हृदय के अन्तर्गत विभिन्न प्राणों की उपासना से यश, धन, श्री, कीर्ति आदि की प्राप्ति होती है। जैसे हृदयान्तर्गत दक्षिण सुषिभूत व्यान की उपासना से तेजस्वी श्रीमान् एवं यशस्वी होना निश्चित है। अभी भी प्राणायाम के माध्यम से कुछ लोग ऐसा करते हैं।

आयु एवं रोगनिवृत्ति के लिए छन्दोग्योपनिषद् (३.१६.१-२) में कहा गया है कि आरोग्य की कामना करनेवाले अपने को यज्ञ रूप से निष्पन्न करें। वशीकरण के उपाय भी कौषीतकि (२-४) में बताये गये हैं।

ग्राहकों से निवेदन

निम्नलिखित संख्यावाले ग्राहकों का चंदा २८-२-७९ को खतम हो जायगा। कृपया ग्राहक महोदय अपना चंदा रकम मनीआर्डर के द्वारा जल्दी ही भेज दें।

H 341 512 635 637 638 639 640 642 644 645 646 647 656 671

निम्नलिखित पते पर चंदा रकम भेजें :

मार्केटिंग अफीसर,
प्रकाशन विभाग,
ति. ति. दे. प्रेस कम्पाउण्ड्,
तिरुपति.
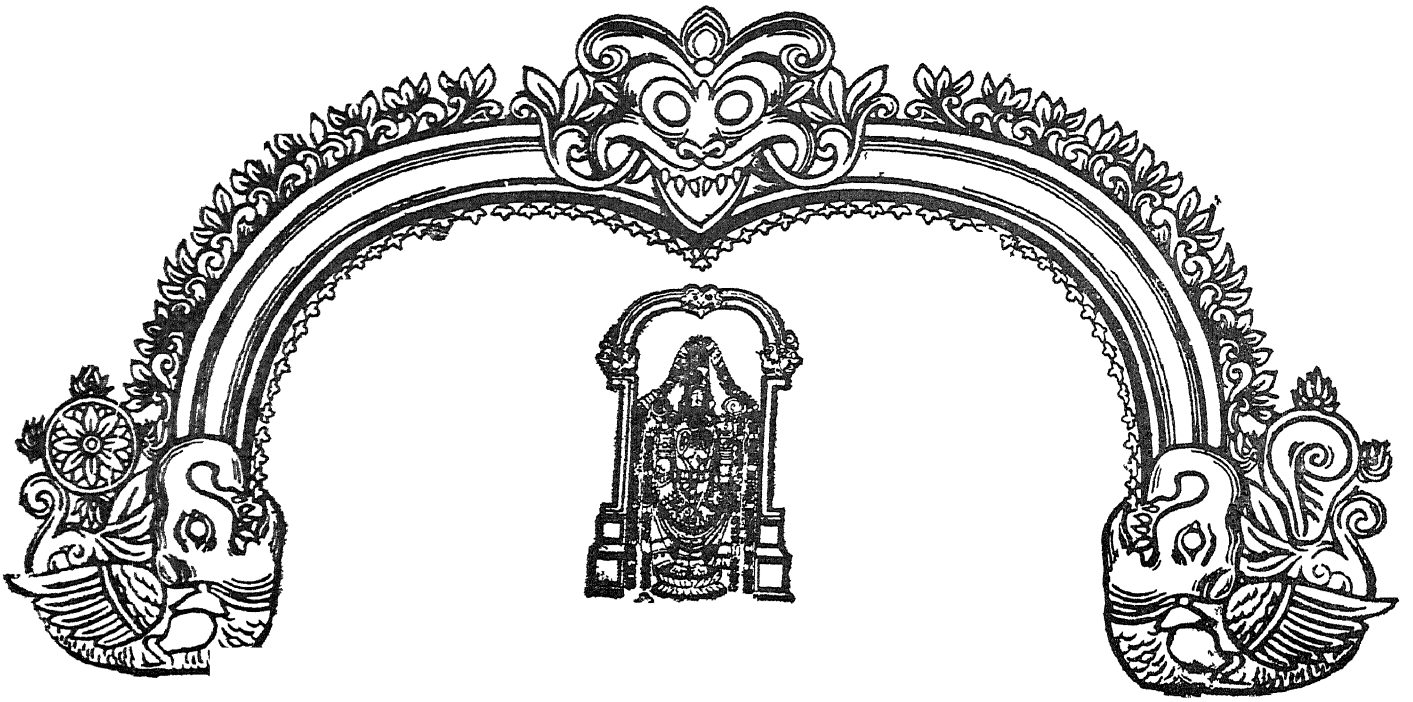
तिरुमल – यात्रियों को सूचनाएँ

भगवान बालाजी के दर्शन

ति. ति देवस्थान को यह विदित हुआ कि कुछ धोखेबाज व्यक्ति यात्रियों से पैसे लेकर भगवान के दर्शन शीघ्र ही करवाने का वादा कर रहे हैं ।

देवस्थान यात्रियों को विदित कराना चाहता है कि जहाँ तक सभव हो एक सयत एवं क्रम पद्धति में भगवान बालाजी के दर्शन कराने का भरसक प्रयत्न कर रहा है । प्रतिदिन दस हजार से अधिक यात्री भगवान बालाजी का दर्शन करने आते हैं और दर्शन की सुविधा केलिए दिन में १४ घंटे का समय मदिर का द्वार खोल दिया जाता है जिस में ११ घटे सर्वदर्शन केलिए नियत है । यदि यात्रियों की भीड अधिक हो तो क्लोजड षेड्स से और अधिक न हो तो सुरक्षित महाद्वार से दर्शन का प्रबध किया जा रहा है ।

वे यात्री जो समय के अभाव, अस्वस्थता अथवा अन्य किसी कारणवश क्यू में खडे नहीं सकते वे प्रति व्यक्ति रु २५/- मूल्य का टिकट खरीद कर मंदिर के अन्दर ही ध्वजस्तंभ के पास से क्यू में शामिल हो सकते हैं जिस से कि उन को ५ मिनट के अन्दर ही भगवान के दर्शन प्राप्त हो सके।

यात्रियों से ति. ति. देवस्थान का निवेदन है कि वे बाहरी व्यक्तियों की सहायता से दर्शन प्राप्त करने का प्रयत्न न करे। शीघ्र दर्शन की सुविधा केलिए ति. ति. देवस्थान के द्वारा जो उत्तम प्रबंध किये गये हैं, कोई कभी व्यक्ति भगवान का दर्शन उससे शीघ्रतर रवाने में असमर्थ है। अतः कृपया यात्रीगण ऐसे धोखेबाजों की झूठे वायदों से हमेशा सतर्क रहें ।

भगवान के दर्शन प्राप्त करने में जो विलंब और प्रतीक्षा करने से जिस सहनशीलता का अभ्यास होता है, वह तो कलियुगवरद श्री वेंकटेश्वर के दर्शन प्राप्त करने केलिए अपेक्षित ही है और वह एक प्रकार की तपः साधना भी है जिस के द्वारा भगवान का संपूर्ण अनुग्रह प्राप्त होता है ।

कार्यनिर्वहणाधिकारी,
ति. ति. देवस्थान, तिरुपति.

"बडे भाग मानुष्य तन भाग" अर्थात् बहुत भाग्य से ही मनुष्यलोक की प्राप्ति होती है। इसलिए प्रश्नोपनिषद् (५।३) में ओंकार के ध्यान से पुनः मनुष्य लोक प्राप्त करने का विधान है।

अच्छे फल चाहनेवालों को अच्छे कर्म करना चाहिए। छांदोग्योपनिषद् में कहा गया है— "स कामः समृध्येते यत्कामः स्तुवीतेति" अर्थात् जैसे कर्म के साथ जैसी कामना करें उसे वैसा ही फल प्राप्त होगा।

पारलौकिक प्रेम को प्राप्त करने का भी विधान उपनिषदों में मिलता है। जैसे स्वर्ग-चाहनेवालों को त्रिणाचिकेत अग्नि का चयन करना चाहिए। क्यों कि त्रिणाचिकेत अग्नि का तीन बार चयन करने पर मनुष्य माता पिता और आचार्य अथवा वेद स्मृति एव शिष्टजन इन तीनों से सम्बन्ध प्राप्त करता है और शान्ति को प्राप्त करता है—त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्म मृत्यू।

ब्रह्मयज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमा शान्तिमत्यन्तनमेति ॥ (कठो॰ १ १.१७)।

फिर कठोपनिषद् मे ही कहा गया है— स मृत्युपाशान्पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ (कठो॰ १ १.१५)

वस्तुतः स्वर्गलोक मे बहुत ही आनन्द है। कहा भी गया है—

स्वर्गे लोके न भय किंचनास्ति न तत्र त्व न जरया बिभेति।

उभे तीर्त्वाशनायां पिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ (कठो॰ १.१.१२)

अर्थात् स्वर्गलोक में कुछ भी भय नहीं है। वहाँ बुढापा भी नही आता है। भूख प्यास भी नहीं लगती है। शोक से रहित होकर आनन्द मिलता है।

मुण्डक उपनिषद् के अनुसार जो पुरुष इन देदीप्यमान अग्निशिखाओं में यथासमय हवन करता है उसे ये सूर्य की किरणों के लिए वहाँ लेजाती है।

उपनिषद् के अनुसार जो व्यक्ति यज्ञकर्म को ही श्रेय का साधन मानते हैं वे कुछ समय तक स्वर्ग मे रहकर पुनः जन्म मरण के चक्र में पडते हैं—

एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यान्ति ॥

इष्टापूर्ति और दत्तकर्म को ही सर्वोत्तम माननेवाले स्वर्गलोक में अपने कर्म फलों का अनुभव करके मनुष्य लोक से भी

नीचे गिर सकता है। ऐसा भी उपनिषद् में कहा गया है।

छान्दोग्यभाष्य (५.१०.३) मुण्डकभाष्य (१ २.१०) के अनुसार जो गृहस्थ अग्निहोत्रादि वैदिककर्मों को करता है तथा वापी कूपादि खुदवाता है तथा योग्यव्यक्ति को धनादि का दान देता है वही मृत्यु के उपरान्त पितृलोक को प्राप्त करता है।

मुण्डक उपनिषद् (१ २.११) में कहा गया है कि अगर अधिकारी तप एव श्रद्धा के साथ अनुष्ठान करता है तो वह मृत्यु के बाद उत्तरायण मार्ग से देवलोक को प्राप्त करता है।

इस प्रकार उपनिषदों मे कल्याण के मार्ग दिखलाये गये हैं। *

ऋग्वेद का साहित्यिक

ऋग्वेद के मन्त्रो की रचना ऋषियो ने मुख्य रूप से देवस्तुति-हेतु की थी। परन्तु प्रकृति के साथ सम-रस होकर रहने वाले कल्पनाशील और भावुक ऋषि अपने मन्त्रो को काव्य के सौन्दर्य से अछूता नही रख सके।

यही कारण है कि उनके मन्त्रो में हमे यदा-कदा उन काव्य-तत्त्वो के अकुर दिखलाई पड जाते है, जिन्हे लौकिक-सस्कृत मे काव्य के मूल-तत्त्व माना गया है; जैसे रस, ध्वनि और अलकार।

उपमा-अलंकार की मनोरम छटा तो ऋग्वेद मे उषा की अरुणिम छवि के समान ही दर्शनीय है।

पौ फटने पर पूर्व-दिशा मे सफेदी झलकने लगती है, किन्तु शेष सारा आकाश श्यामल ही रहता है। सत्यश्रवा के अनुसार यह सफेदी प्रकाश की झील है और इसीलिए वे कल्पना करते है—

एषा शुभ्रा न तन्वो विदानो-
र्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात्।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्यु-
षा दिवो दुहिता ज्योतिषागात्॥

ऋ. ५,८०,५

कवि देखते है कि पूर्व-दिशा मे झलकने वाली सफेदी के बीच धीरे-धीरे एक नयन-रम्य अरुणिमा उठ रही है; और वे कल्पना कर उठते है कि यह अरुणिमा ही उस उषा का मनोमोहक रूप है, जो वहाँ स्नान कर रही है। और फिर स्नान करके वह धीरे-धीरे ऊपर आती है तथा हमें पूर्णत· दृष्टिगोचर होती है। सहज ही कवि उषा की उपमा उस गौरवर्ण युवति से देते है, जो किसी झील मे स्नान करके धीरे-धीरे पानी से बाहर आती है और पहिले से अधिक प्रफुल्ल दिखाई देती है।

उषा के इस अरुणिम रूप ने आधुनिक कवि रवीन्द्रनाथ को भी मोहित किया था। अपनी कविता "विदायो अभिशाप" मे वे सद्य.स्नात देवयानी के प्रति कच से कहलवाते है—

"तुमि सद्य स्नान करि
दीर्घ-आर्द्र-केश-जाले नव-शुक्लाम्बरी,
ज्योति-स्नात-मूर्तिमती-उषा, हाते साजि
एकाकी तुलितेछिले नव-पुष्प-राजि
पूजा लागिया.. .. ... ।"

(सञ्चयिता)

जाज्वल्यमान अग्नि का वर्णन करने वाले निम्नलिखित मन्त्र मे भी अलंकार-सौन्दर्य द्रष्टव्य है—

स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वी
पशुर्नैति स्वयुरगोपाः।
अग्नि. शोचिष्मॉं अतसान्युष्णन्
कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम॥

ऋ २,४,७

कवि की कल्पना की पृष्ठ-भूमि मे सम्भवत: दिन या रात मे घास अथवा झाडिया जलाने का दृश्य रहा होगा। इसीलिए कवि सोमाहुति कहते है कि अग्नि जलता हुआ धरती पर चारों ओर फैल गया। जब अग्नि झाड़-झंखार को जलाता हुआ निर्बाध-गति से शीघ्रतापूर्वक आगे बढता जाता है; तब उसकी उपमा पशु से देते हुए कवि कहते है कि अग्नि उसी प्रकार बढ रहा है, जिस प्रकार गोपरहित स्वेच्छाचारी पशु जिधर मन में आये उधर ही बढता चला जाता है।

जलाता हुआ अग्नि जब आगे बढ जाता है, तब उसके पीछे की जमीन काली हो जाती है; सम्भवत: इसी लिए कवि अग्नि को कृष्णव्यथि कहते है। और कहते है कि अग्नि इस प्रकार झाड-झखार को जलाता हुआ मानो धरती को आस्वादित करता है।

कवि ने अग्नि द्वारा दहन की आस्वादन-रूप में सम्भावना की है; अत: यहाँ उत्प्रेक्षा-अलकार प्रेक्षणीय है।

धरती पर उगे-हुए झाड-झखार को भस्मी-भूत करते-हुए अग्नि को देखकर ही कवि सम्भावना करते है कि मानो अग्नि धरती को आस्वादित करता है।

इस सम्भावना का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि जब किसान खेत की धरती पर उगे हुए झाड-झखार को जलाते है, तब धरती और अधिक उर्वर हो जाती है तथा सुस्वादु अन्न प्रदान करती है।

वैदिक-कवि की इस उत्प्रेक्षा के साथ-साथ कालिदास की निम्नलिखित उपमा का पठन कितना मनोहारी है—

शापोप्यदृष्ट-तनयानन-पद्म-शोभे
सानुग्रहो भगवता मयि पातितोऽयम्।
कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो
बीज-प्ररोह-जननीं ज्वलनः करोति॥

(रघुवश ९,८०)

ऋग्वेद के काव्य मे हमे यदा-कदा कतिपय रसों के बीज भी दिखाई दे जाते है।

मूल्यांकन ....

हारे-हुए जुआरी के गीत मे सर्वत्र करुण-रस का स्पर्श है। एक समय था जबकि जुआरी पाँसो को छोड़ कर इस ससार मे और किसी की भी परवाह नही करता था। किन्तु हार जाने के पश्चात् वह अपने-आपको इस ससार मे अकेला पाता है। अब उसे अपनी वह पत्नी याद आती है, जिसे उसने केवल जुए के कारण छोड़ दिया था, जो उसपर कभी क्रोधित नही हुई, जो हमेशा उसके सुख का ध्यान रखती थी और जो अन्त तक पतिव्रता रही—

न मा मिमेथ न जिहील एषा
शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप
जायामरोधम्।
(ऋ १०,३४,२)

और इसी प्रकार जुआरी जुए मे सब कुछ को देने के कारण करुण विलाप करता है।

रस की दृष्टि से निम्नलिखित मन्त्र भी ध्यान देने योग्य है—

आ बुन्दं वृत्रहा ददे जात: पृच्छद् वि
मातरम्।
क उग्रा: के ह श्रृण्विरे ॥
(ऋ. ८,४५,४)

जन्म लेते ही इन्द्र ने अपने हाथ मे बाण लेकर माता से पूछा कि बतलाओ, 'कौन है वह उग्र (योद्धा), कौन है वे जिनके बारे मे अधिक सुना जाता है?'

इन्द्र का अपने विरोधियो से युद्ध करने का जो उत्साह था, वह कवि त्रिशोक ने अत्यन्त प्रभावपूर्ण स्थायी भाव शब्दो मे व्यक्त किया है। और 'उत्साह' ही तो है स्थायी भाव वीर-रस का जिसका उदाहरण मम्मट ने हनुमन्नाटक से दिया है—

क्षुद्रा: सन्त्रासमेते विजहत हरय:
क्षुण्ण-शक्रेभ-कुम्भा,
युष्मद्-देहेषु लज्जां दधति परममी सायका
निष्पतन्त:।
सौमित्रे, तिष्ठ, पात्र त्वमसि न हि रुषां
नन्वहं मेघनाद,
किंचिद्-भ्रू-भङ्ग-लीला-नियमित-जलधिं
राममन्वेषयामि ॥

भाव-'ध्वनि के अन्तर्गत देवविषयक-रति के बीज तो हमे ऋग्वेद मे प्रचुरता से मिलते है, क्योकि प्रत्येक मन्त्र का एक देवता है, जिसके लिये कवि ने अपने दो शब्द प्रस्तुत किये है। इनमे से कुछ मन्त्र तो हमे लौकिक-सस्कृत के उदाहरणो का स्मरण दिलाते है, जैसे—

मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियाना
मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानाम्।
मन्ये त्वा सत्वनामिन्द्र केतु
मन्ये त्वा वृषभ चर्षणीनाम् ॥
(ऋ. ८,९६,४)

अत: यदि ऋग्वेद के काव्य मे ध्वनि के सूक्ष्माकुर दिखलाई पडते है, तो कोई आश्चर्य नही। उदाहरणार्थ यह मन्त्र ले—

डा. महेन्द्रकुमार वर्मा

आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु
मा न सूर्यस्य संदृशो युयोथा:।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत
प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभि: ॥
(ऋ. २,३३,१)

दक्षिण प्रांतीय एन्डोमेन्ट कमिशनर महोदयों का समावेश
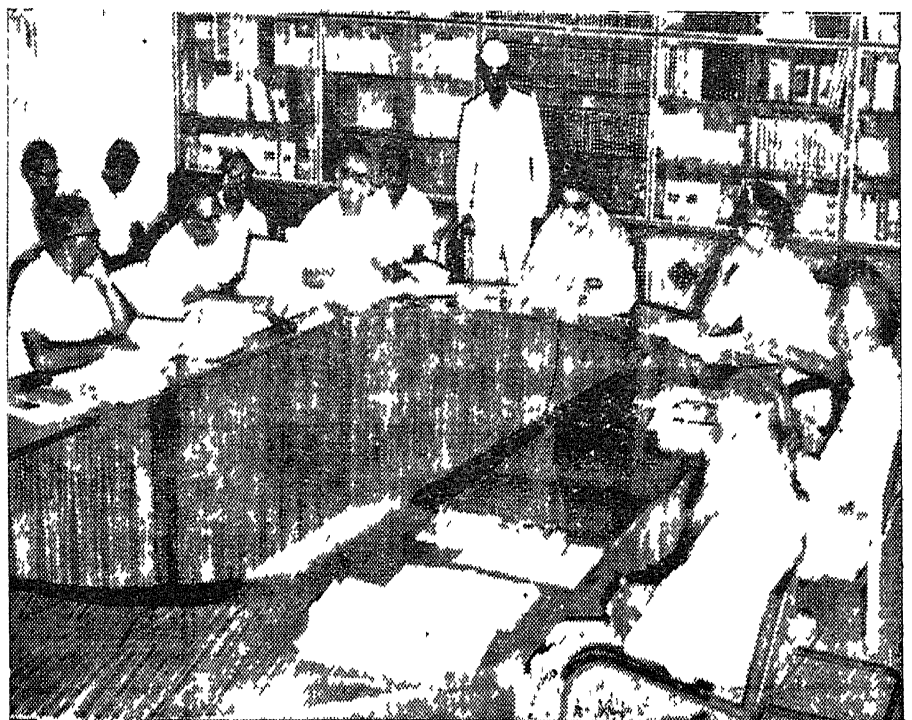
रुद्र से प्रार्थना करते हुए गृत्समद कहते है—'हे मरुतो के पिता हमें सूर्य के दर्शन से अलग मत करो (मा न. सूर्यस्य सन्दृशो युयोथा)।" कवि का अभिप्राय यह है कि रुद्र की कृपा मे (तथा उनके द्वारा प्रदत्त औषधियो के द्वारा) हम लोग पूर्ण स्वस्थ रहे, किसी को भी नेत्ररोगादि विकलेन्द्रियत्व न हो और इस प्रकार पूर्ण स्वस्थ रहते हुए शतजीवी होवे। अत "मा व सूर्यस्य सन्दृशो युयोथा" इस कथन मे यह सुन्दर वस्तुध्वनि निहित है कि हम लोग अपनी आयु के पूरे सौ वर्ष तक जीवित रहते हुए सूर्य की ऊष्मा का उपभोग करे और दृष्टिविहीनता-आदि नेत्र-रोगो से ग्रसित न होकर नित्य ही सूर्य का दर्शन किया करे।

काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से निम्नलिखित मन्त्र भी परिप्रेक्षणीय है—

साध्वपासि सनता न उक्षिते उषासानक्ता
वय्येव रण्विते।

तन्तु तत सवयन्ती समीची यज्ञस्य पेश· सुदुघे
पयस्वती।

(ऋ २,३,६)

कवि उषा और निशा की उपमा दो बुननेवाली स्त्रियो से देते है। जिस प्रकार दो सुन्दर स्त्रिया फैले हुए तन्तु को परस्पर मिल कर बुनती है, अर्थात् यज्ञ के रूप को बुनती है। परस्पर मिल कर फैले हुए तन्तु को बुनती है। उसी प्रकार सुन्दर उषा और निशा भी कवि का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि यज्ञ का रूप ही वह तन्तु है जिसे उषा और निशा बुनती है। इस प्रकार "तन्तु ततम्" और "यज्ञस्य पेश" मे अभेद बतलाए जाने के कारण हमे यहाँ रूपक दृष्टिगोचर होता है।

निशा से कवि का तात्पर्य सम्भवत सन्ध्या से है और उनका सकेत सम्भवतः प्रातःकाल और सन्ध्याकाल होने वाले यज्ञ से है कि उषा और सन्ध्या के कारण ही यह प्रात.कालीन और सायकालीन यज्ञ का रूप निर्मित हुआ है। इस सन्दर्भ मे जैमिनीय-ब्राह्मण का यह अश पठनीय है—

अथ पशुकामः साय पशुषु समेतेषु अग्निहोत्र
जुहुयात्।

अविसृष्टेषु प्रात· ॥

(जै. ब्रा १,५)

इसी सन्दर्भ मे 'सुदुघा' और 'पयस्वती' इन विशेषणो का प्रयोग भी स्पष्ट हो जाता है। वसे तो, उषा और सन्ध्या सुदुघा और पयस्वता नही हो सकती, (क्योकि वे गाये नही है), अत वाच्य अविवक्षित हो जाता है। किन्तु लक्षणा द्वारा कवि उन उषा और सन्ध्या की ओर सकेत करते है, जिन मे गौओ को दुहा जाता है और गौओ से प्रचुर मात्रा मे दूध मिलता है। निश्चय ही इन दो विशेषणो मे यह लक्षणामूलक ध्वनि निहित है कि कवि उष काल और सन्ध्याकाल मे जो यज्ञ करते है, उसके फलस्वरूप उन्हे अभीष्ट प्राप्त हो, उनकी गाये दोनो समय दुह जाने के योग्य हो और दूध की प्रचुर मात्रा प्राप्त हो।

मन्त्र के इस अर्थ-सौन्दर्य को बढाने मे निश्चित ही सहायक होता है स्, न्, त्, व्, की आवृत्ति से उत्पन्न होने वाला मधुर अनुप्रास, और 'तन्तुतत सवयन्ती समीची "यह मन्त्राश हमे सहसा लौकिकसस्कृत के माधुर्यगुण की याद दिला देता है। ❀

साभार—विश्वज्योति

भगवान बालाजी का सहस्र कलशाभिषेक

आगम शास्त्रों के अनुसार निर्मल जल से अभिषेक करना अत्यत पवित्र आचार है।

सहस्र कलशाभिषेक भक्तों द्वारा लौकिक तथा पारलौकिक सुखों के प्राप्त करने के उद्देश्य से मनायेजानेवाली विशेष अर्जित सेवा है।

बालाजी के गर्भगृह के सामने नीचे जमीन पर धान (Paddy) को शय्या के आकार में बिछाया जायगा। चंदन इत्यादि सुगंधित द्रव्यों के परिमल तीर्थ से १०००८ रजत कलशों को भरकर उस के ऊपर रखते हैं। वेदमंत्रों के पठन तथा होम से उन कलशों को पवित्र किया जाता है। उस के बाद आगमानुसार उस पवित्र तीर्थ से भोग श्रीनिवास, मलयप्पस्वामी तथा उनकी देवियों और विश्वक्सेन का अभिषेक किया जाता है। बंगारु वाकिलि (स्वर्ण द्वार) के पास होम तथा अभिषेक सपन्न होता है। श्री श्रीनिवासमूर्ति गर्भगृह से बाहर केवल इस एक ही अवसर पर विराजते हैं इस समय भी भोग श्रीनिवासमूर्ति को मूलमूर्ति से रेशम की डोरी द्वारा सम्बन्ध रखा जाता है।

सहस्र कलशाभिषेक केवल बुधवार को सपन्न होनेवाली अर्जित सेवा है जिस की दर रु. २,५०० है। जो गृहस्थ इस सेवा को मनायेगा वह अपने साथ परिवार के १० लोगों को ले जा सकता है। सेवा के अत में वस्त्र पुरस्कार के साथ गृहस्थ को बड़ा, अप्पम, दोसै इत्यादि प्रसाद भी दिये जाते हैं।

श्री वेङ्कटेश्वरस्वामीजी का मंदिर, तिरुमल.

अर्जित सेवाओं की दरें

I श्री बालाजी के दर्शन :-

१	प्रत्येक आरती के लिये	रु 1		२	तोमालसेवा के बाद दर्शन	रु 4
३	अर्चना के बाद दर्शन	4		४	एकान्तसेवा के बाद दर्शन	4
५	पूलगिसेवा के बाद दर्शन	4		६	अभिषेक के बाद दर्शन	4

विशेष दर्शन ... रु. 25—00

सूचना — उपरिलिखित सेवाओ के लिए एक टिकट के द्वारा एक ही दर्शनार्थी भगवान का दर्शन प्राप्त कर सकेगा।

II सेवाएं :—

१	अमन्त्रणोत्सव	रु 130	७	जाफरा बरतन (Vessel)	रु 100
२	पूलगि	60	८	सहस्रकलशाभिषेक	2500
३	पूरा अभिषेक	450	९	अभिषेक कोइल आलवार	1745
४	कर्पूर बरतन (Vessel)	250	१०	तिरुप्पावडा	5000
५	पुनगु तेल का बरतन (Vessel)	100	११	पवित्रोत्सव	1500
६	कस्तूरि बरतन (Vessel)	100			

सूचना – सेवासख्या१ — इस सेवा में छे व्यक्ति ही दर्शन प्राप्त कर सकेगे। जिस दिन प्रात काल तोमाल सेवा और अर्चना की है केवल उसी दिन रात में एकान्तसेवा के लिए भी भक्त दर्शनार्थ जा सकते है।

सेवा क्रमसंख्या २–यह सेवा केवल गुरुवार की रात को मनायी जाती है। केवल 2 व्यक्ति ही दर्शन प्राप्त कर सकेंगे।

सेवा क्रमसख्या ३–७ — केवल शुक्रवार को मनायी जाती है। इन सेवाओ के लिए प्रवेश इस प्रकार होगा —

क्रमसख्या ३ – गिन्नें के साथ केवल २ व्यक्ति
४ – गिन्नें के साथ केवल २ व्यक्ति।
५ – ७ – गिन्नें के साथ केवल एक व्यक्ति।

सेवा क्रमसख्या ८ – १० – प्रत्येक सेवा सम्पूर्ण दिन का उत्सव है। सेवा करानेवाले भक्त को प्रसाद दिया जायगा, जिस मे बडा, लड्डू, पापड, दोसा इत्यादि होंगे। इस के अतिरिक्त सेवा न ८ के लिए वस्त्र भी भेट के रूप मे दिया जायगा। सहस्र कलशाभिषेक, तिरुप्पाबडा तथा पवित्रोत्सव सेवाओ में हर एक सेवा को १० व्यक्ति जा सकते है।

साधारण सूचना –रिवाजो के अनुसार दातम (Datham) और आरती के लिये एक रुपये का अतिरिक्त शुल्क अदा करना पडेगा।

III उत्सव —

१.	वसन्तोत्सव	रु 2000	३	ब्रह्मोत्सव	रु 750
२.	कल्याणोत्सव	1000	४.	प्लवोत्सव	रु १५००

सूचना :- १ **वसन्तोत्सव :-** जो भक्त वसन्तोत्सव मनाना चाहते है उनकी सुविधा के अनुसार और मदिर की सुविधा के अनुसार यह उत्सव तीन दिन अथवा उमसे कम दिनो मे मनाया जायगा और उन्हे वस्त्र पुरस्कार मिलेगा ।

२ **ब्रह्मोत्सव .-** इस उत्सव को जो यात्री मनाना चाहते है अपने साथ ६ साथियो को ला सकते है, तथा तोमालसेवा, अर्चना और रात को एकान्तसेवा में भाग ले सकते हैं। यह उत्सव तीन दिन तक अथवा उससे कम दिनो में यात्री की सुविधा के अनुसार और मदिर की सुविधा के अनुसार मनाया जायगा । उत्सव के दिनो में उस के मनानेवाले को पोगल और दोसा इत्यादि प्रसाद भी दिये जायेंगे । उत्सव के अन्त में वस्त्र पुरस्कार दिया जायगा ।

३ **कल्याणोत्सव या श्रीस्वामीजी के विवाहोत्सव** के अन्त मे वस्त्र पुरस्कार और लड्डू, बडा, पापड, दोसा आदि नियमानुमार प्रसाद के साथ दिये जायेंगे ।

IV वाहन सेवाएँ :-

१ वाहन सेवा सर्वभूपाल वज्रकवच सहित ७२+१ (आरती)	रु	73
२ वज्रकवचसहित वाहनसेवा स्वण गरुडवाहन, कल्पवृक्ष, बडा शेषवाहन, सर्वभूपाल, सूयप्रभा, प्रत्येक ६२+१ (आरती) . ..		63
३ चाँदी गरुडवाहन, चन्द्रप्रभा, गज (हाथी) वाहन, अश्ववाहन, सिंहवाहन, हंसवाहन, प्रत्येक ३२+१ (आरती)		33

सूचना :- वाहनसेवा मनानेवाले गृहस्थ को प्रसाद में एक बडा दिया जायगा ।

साधारण सूचना :- न ३ और ४ के लिये दातम और आरती के लिये समय और रिवाजानुसार एक एक रुपये का अतिरिक्त शुल्क अदा करना होगा ।

V भगवान को प्रसाद (भोग) समर्पण (१/४ सोला) : -

१. दद्दाभात	रु	40	४ शल्करपागलि	रु	65	७ शक्करभात	रु	85
२ बघार भात		50	५ केसरीभात		90	८ शीरा	..	155
३ पोगलि(घी और मिर्चभात)		55	६ पायसम (खीर)	...	85			

सूचना :-भोग के बाद प्रसाद भक्त को दिये जायेगे । भोग के बाद अपने प्रसादो को भक्त लोग आकर अपने बर्तन मे स्वीकार करेगें ।

VI पक्वान्नो की भेंट :—

१ लड्डू	रु	450	४ दोसे	रु	100	७ सुखी	रु	200
२ बडा	.	250	५ पापड		230	८ जिलेबी		450
३. पोली	..	225	६ तेनतोल		200			

सूचना —जो गृहस्थ उपर्युक्त पक्वानो की भेंट देत है उन्हे भोग के बाद ३० पनियारम दिय जायेगे। प्रसाद-पन्यारम को गृहस्थ स्वय आकर मन्दिर से ले जा सकते है । भोग के बाद मन्दिर की दूसरी घटी बजते ही प्रसाद पन्यारम दिया जायगा ।

VII. नित्य सेवाएँ :—

१ नित्य कर्पूर हारती रु. 21   २. नित्य नवनीत आरती रु 42   ३. नित्य अर्चना रु 42

सूचना :-नित्य सेवाओ के लिये प्रथम वर्ष में अतिरिक्त रूप से देय शुल्क वर्ष के पहले हर एक सेवा के लिए अग्रिम के रूप मे देना पडेगा । जो भक्त इन नित्य सेवाओ को मनाते है उनको भगवान के दर्शन केलिए प्रवेश नही मिलेगा । भक्तो की अनुपस्थिति मे ही उनके नाम पर इन सेवाओ को संपन्न किया जायगा ।

वैदिक मन्त्रों के देवताओं का स्वरूप और महत्त्व

डॉ० भवानी प्रसाद भट्टाचार्य

वैदिक वाङ्मय में बहुत से देवी-देवताओं की स्तुति देखते हैं। विशेषत. ऋग्वेद में अग्नि, इन्द्र, सूर्य, वायु इत्यादि अनेक देवताओं का स्तुतिगान हुआ है। वैदिक मन्त्रो का अर्थ सम्यक् रूप से जानने के लिए सर्वप्रथम हमें तीन विषयो का ज्ञान होना अत्यावश्यक है— ऋषि, छन्द और देवता। प्रत्येक मन्त्र को पढने के पूर्व ये तीन विषय जान लेने चाहियें। यदि इन तीन विषयो को न जान कर कोई मन्त्रपाठ करे या पढाये, तो उसे पाप स्पर्श करेगा। इस से हम जान सकते हैं कि प्रत्येक मन्त्र के ऋषि, छन्द तथा देवता का जानना कितना आवश्यक है।

वेद के प्रत्येक मन्त्र का अलग-अलग देवता है। उस मन्त्र के द्वारा केवल उसी देवता का ही आवाहन और स्तुति की जाती है। देव, या देवता शब्द की व्युत्पत्ति दिव् धातु से मानी गई है। 'दिव्' धातु से 'अच्' प्रत्यय लगा कर 'देव' शब्द बनता है। 'दिव्' धातु के अनेक अर्थ है। उन में से एक अर्थ है 'प्रकाशमान होना'। सो जो प्रकाशमान है, भास्वर है, स्वतः प्रकाशमान है वही देवता है। देव और देवता दोनो शब्द समानार्थक है। निरुक्त में आचार्य यास्क देव-शब्द की व्युत्पत्ति के बारे मे कहते है — जो दान करते है वही देवता है अथवा जो अपने आप प्रकाशित होने के साथ-साथ दूसरो को भी प्रकाशित करते है, वही देवता है। देवताओ को प्रसन्न करने के लिए यदि मन्त्र पाठ किया जाय, स्तुति गान किया जाय और याग यज्ञ आदि अनुष्ठान किये जायें, तो हमारे अभीष्ट की पूर्ति होती है। इसी कारण से देवता अभीष्टदाता है। दानशब्द का यही अर्थ है। जो स्वय प्रकाशमान है स्वयं ज्योति है और दूसरे को प्रकाशित करते है, वही देवता है।

पहले ही यह कहा गया है कि प्रत्येक वेद-मन्त्र का एक पृथक् देवता है। अतएव प्रत्येक मन्त्र का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिये देवता का ज्ञान जरूरी है। बृहद्देवता में कहा गया है वेद मन्त्रो के देवताओ का ज्ञान भली प्रकार प्राप्त करना चाहिये, क्योकि देवता ज्ञान होने के पश्चात् ही हमें मन्त्र के अर्थ का यथार्थ ज्ञान हो सकता है।

प्रस्तुत निबन्ध में मन्त्रो के देवता और उनके निर्धारण-प्रकार की आलोचना प्रस्तुत की जा रही है। कात्यायन ने अपने 'सर्वानुक्रमणी' ग्रन्थ में लिखा है — जिसका वाक्य है वही ऋषि है, उस ऋषि द्वारा जिसका वर्णन या प्रशसा की होती है वही देवता है, अक्षर समूहो का परिमाण ही छन्द है।

अब वेद मन्त्रो के देवताओ का निरूपण किस प्रकार से किया जाता है, उसकी आलोचना करेगे। निरुक्त में भी कहा गया है — अभीष्ट पाने के इच्छुक ऋषि ने धन-ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये जिस देवता की स्तुति की है, वही उस मन्त्र का देवता है। बिलकुल इसी बात की प्रतिध्वनि हम बृहद्देवता में भी पाते है। इसमे कहा है कि किसी वस्तु की कामना करता हुआ द्रष्टा ऋषि जिस किसी देवता की स्तुति करता है वही उस मन्त्र का देवता होता है। किसी देवता की प्रमुख रूप से भक्ति-पूर्वक स्तुति करने वाला मन्त्र उसी देवता को सम्बोधित होता है। निरुक्त में देवता की दृष्टि से मन्त्र-समूहो को तीन भागो में विभक्त किया गया है — परोक्ष-कृत, प्रत्यक्ष कृत तथा आध्यात्मिक। परोक्षकृत मन्त्र उन्हे कहा जाता है, जिन में देवता का वर्णन परोक्ष रूप से किया जाता है अर्थात् जहा पर देवता का निर्देश 'युष्मद्' अथवा 'अस्मद्' शब्दो के द्वारा न होकर, 'इन्द्र' इत्यादि शब्दो के द्वारा अथवा युष्मद् अस्मद् के अतिरिक्त किसी अन्य सर्वनाम शब्द के द्वारा होता है। संक्षेप मे परोक्षकृत मन्त्रो में देवतावाचक शब्द होगा प्रथम पुरुष में और देवतावाचक शब्द कर्त्ता होने पर क्रिया भी प्रथम पुरुष की ही होगी। सभी स्थलों में दोनो का उल्लेख रहेगा, ऐसी बात नहीं है। बल्कि एक का उल्लेख रहने पर दूसरे का अध्याहार करना होगा। ऐसे परोक्षकृत मन्त्र-समूहो के देवतावाचक शब्द सभी विभक्तियो से युक्त हो सकते हैं— जैसे 'इन्द्र' 'इन्द्रम्' 'इन्द्रेम्' 'इन्द्रेण' 'इन्द्राय' 'इन्द्रात्' 'इन्द्रस्य' 'इन्द्र' इत्यादि। ऐसे उदाहरणो में देवतावाचक इन्द्र शब्द प्रथमा से सप्तमी तक की सभी विभक्तियो से युक्त होकर प्रयुक्त हुआ है। प्रत्यक्षकृत मन्त्रो के बारे मे कहा गया है कि जिन मन्त्रों मे देवताओ का वर्णन प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है अर्थात् जिन मन्त्रो में क्रिया मध्यम-पुरुष में और 'त्वम्' सर्वनाम देखा जाता है, वे मन्त्र प्रत्यक्षकृत कहलाते हैं। 'त्वम्' शब्द से यहाँ 'युष्मद्' शब्द का कोई भी विभक्तिपद लिया जाता है। सभी स्थलो में दोनो का प्रयोग रहना आवश्यक नहीं

है, प्रत्युत मध्यम पुरुष की क्रिया रहने पर युष्मद् शब्द की प्रथमा विभक्ति के किसी रूप का अध्याहार करना होगा और युष्मद् शब्द के प्रथमा विभक्ति वाले रूप के रहने पर मध्यम पुरुष की क्रिया का अध्याहार करना होगा। प्रत्यक्षकृत मत्र का उदाहरण — 'त्वमिन्द्र बलादधि' उक्त मन्त्र में इन्द्र को 'त्वम्' शब्द के द्वारा निर्देशित किया गया है। इस मन्त्र के वर्णन से लगता है कि देवता इन्द्र प्रत्यक्ष है। इस मन्त्र में 'त्वम्' शब्द का प्रयोग है और 'असि' शब्द का अध्याहार होना चाहिये। एक और उदाहरण — 'वि न इन्द्र' मृधो जहि'। इस मन्त्र में 'विजहि' मध्यमपुरुष के क्रियाशब्द का प्रयोग हुआ है और 'त्वम्' शब्द अध्याहार करना चाहिये। 'वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितार.' इस मन्त्र में देवतावाचक युष्मद् शब्द द्वितीया विभक्ति में है। इसी प्रकार तृतीया आदि विभक्तियो के उदाहरण भी मिलते हैं। प्रत्यक्षकृत मन्त्र के स्वरूप के सम्बन्ध में बृहद्देवता में कहा गया है कि जिस मन्त्र में देवता का नाम प्रत्यक्ष रूप से निर्दिष्ट रहेगा, उसी को उस मन्त्र का देवता समझना चाहिये; क्यो कि ऐसे पदो का यही लक्षण होता है। कई मन्त्रो मे स्तोता तो प्रत्यक्षकृत अर्थात् मध्यमपुरुष द्वारा निर्देशित होते है, किन्तु स्तोतव्य देवता परोक्षकृत अर्थात् इन्द्र इत्यादि शब्दो के द्वारा अथवा युष्मद् अस्मद् से भिन्न किसी अन्य सर्वनाम शब्द के द्वारा निर्देशित होते है। इस प्रकार के मन्त्र परोक्षकृत कहलाते है। यास्काचार्य भी यही कहते है। इसका उदाहरण निम्नलिखित है — 'मा चिदन्यद्विसंसत' 'कण्वा अभिप्रगायत' 'उपप्रेत कुशिकाश्चेतयध्वम्' इन तीनो मन्त्रो में स्तोत्रगण प्रत्यक्षकृत अर्थात् मध्यम पुरुष की क्रिया के साथ सम्बन्धित है। अतएव उपर्युक्त नियमानुसार जहा पर युष्मद् शब्द का अध्याहार करना चाहिये। यहा पर स्तोतव्य देवतागण परोक्षकृत है, जिसके कारण वे इन्द्र आदि शब्दो के द्वारा निर्देशित होते है।

अब आध्यात्मिक मन्त्रो की आलोचना प्रस्तुत की जाती है। जिन मन्त्रो मे देवता स्वय अपना वर्णन करते है अर्थात् जिन मन्त्रो मे क्रिया उत्तम पुरुष की होती है और 'अहम्' सर्वनाम देखा जाता है, उन्हे आध्यात्मिक मन्त्र कहते है। जैसे कि पहले कहा जा चुका है कि दोनो का प्रयोग रहेगा ऐसी बात नहीं है, बल्कि उत्तम पुरुष की क्रिया रहने पर 'अस्मद्' शब्द की प्रथमा विभक्ति के किसी रूप का अध्याहार करना होगा और 'अस्मद्' शब्द के प्रथमा विभक्ति के व्यवहार रहने पर उत्तम पुरुष की क्रिया व्यवहार करना होगा। उदाहरण स्वरूप वैकुण्ठ इन्द्र सूक्त, लवसूक्त और देवीसूक्त इत्यादि। ऋग्वेद के १०, ४८, ४९ सूक्त के मन्त्रो मे वैकुण्ठ इन्द्र अपना बर्णन अपने आप ही करते है। उसी तरह ऋग्वेद के १०, ११८ सूक्त में लवरूपी इन्द्र ऋषियो के पास अपनी महिमा का कीर्तन अपने आप करते है। देवीसूक्त में भी अम्भृण महर्षि की कन्या वाग्देवी 'अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि' इत्यादि मन्त्रो के द्वारा अपनी स्तुति अपने आप ही करती है। इनके अतिरिक्त और अनेक आध्यात्मिक मन्त्र वेद में देखने को मिलते है। वेद में प्रत्यक्षकृत और परोक्षकृत मन्त्र ही अधिक सख्या में है। उनकी तुलना में आध्यात्मिक मन्त्रो की सख्या कम है।

पहले कहा जा चुका है कि किसी मन्त्र के देवता का निर्णय करने के लिये पहले हमें यह देखना होगा कि अभीष्ट पाने वाला ऋषि किस देवता की स्तुति द्वारा उसका अनुग्रह प्राप्त करने के लिए प्रार्थना कर रहा है। ऋषि जिस देवता की स्तुति करता है, वही उस मन्त्र का देवता है। यह नियम केवल आदिष्ट देवता वाले मन्त्रों पर ही लागू होता है। अर्थात् जिन मन्त्रों में देवता का उल्लेख स्पष्ट रूप से हुआ है केवल उन्ही मन्त्रो में पर ही यह नियम लागू होगा। किन्तु वेद में ऐसे भी अनेक मन्त्र है, जिन में देवता अनादिष्ट है अर्थात् जिन में देवता का कोई स्पष्ट उल्लेख नही है। उन मन्त्रो में देवता का निर्धारण किस प्रकार होगा, अब इसको आलोचना करते है। किसी मन्त्र में देवता का उल्लेख स्पष्ट रूप से न रहने पर सब से पहले हमे यह देखना होगा कि वह मन्त्र किस यज्ञ में अथवा यज्ञाङ्ग में प्रयुक्त होता है। जिस यज्ञ अथवा यज्ञाङ्ग में उस मन्त्र का विनियोग होता है, उस यज्ञ अथवा यज्ञाङ्ग का देवता ही उस मन्त्र का देवता होता है। जैसे अग्निष्टोम यज्ञ का देवता अग्नि है। अनादिष्ट देवता सम्बन्धी कोई मन्त्र यदि अग्निष्टोम यज्ञ में प्रयोग किया जाता है, तो समझना होगा कि उस मन्त्र का देवता अग्नि है। अग्निष्टोम यज्ञ के तीन अङ्ग है — प्रातः सवन, माध्यन्दिनसवन तथा तृतीयसवन। प्रातःसवन के देवता अग्नि माध्यन्दिन सवन के देवता इन्द्र और तृतीयसवन के देवता आदित्य

है । यदि कोई अनादिष्ट देवता सम्बन्धी मन्त्र प्रातः सबन में विनियुक्त होता है, तब उस मन्त्र का देवता अग्नि होगा । यदि माध्यन्दिनसवन में प्रयुक्त होता है, तो उसका देवता इन्द्र होगा और तृतीयसदन में प्रयुक्त होने पर उसका देवता आदित्य होगा । इस तरह अनिर्दिष्ट देवता वाले मन्त्रो के देवता का निर्णय करना चाहिये । दूसरी ओर ऐसे भी अनेक अनादिष्ट देवता वाले मन्त्र है, जिनका प्रयोग किसी यज्ञ अथवा यज्ञाङ्ग मे नहीं होता । उन मन्त्रो के देवता का निर्धारण करते हुए याज्ञिकगण कहते है, ऐसे मन्त्र समूह के देवता प्रजापति है । इसके कारण स्वरूप वे कहते है कि प्रजापति अनिरुक्त अर्थात् सृष्टि के पूर्व ही गुण-क्रियादि द्वारा अनुक्त रहते हें । अनादिष्ट देवता विषयक मन्त्रो मे भी देवता अनुरक्त है । इन दोनो के बीच यही सादृश्य है । नैरुक्तगण याज्ञिक मत का समर्थन नहीं करते है । उनके मतानुसार जब किसी अनादिष्ट देवता विषयक मन्त्र का किसी यज्ञ या यज्ञाग में विनियोग न मिले, तो उस मन्त्र का देवता नराशंस होगा । नराशस शब्द का अर्थ है अग्नि अथवा यज्ञ । कात्थक्य और शाकपूणि दोनो ही नैरुक्तमतावलम्बी है । कात्थक्य के मतानुसार नराशस शब्द का अर्थ यज्ञ है । यहाँ यज्ञ शब्द का अर्थ विष्णु है । शाकपूणि के मतानुसार नराशंस शब्द का अर्थ देवता अथवा सर्वदेवताओ का आश्रय अग्नि है । अतएव उपर्युक्त अनादिष्ट देवता-विषयक मन्त्रो का देवता अग्नि अथवा विष्णु समझना होगा ।

याज्ञिकमत और नैरुक्तमत के अतिरिक्त एक और मत भी है । इस मत के अनुसार इस प्रकार के मन्त्र जो किसी यज्ञ अथवा यज्ञाङ्ग में प्रयुक्त नही होते, उनके देवता की कल्पना हम अपनी इच्छानुसार कर सकते है । निरुक्त के प्रसिद्ध टीकाकार दुर्गाचार्य ने कहा है अनादिष्ट देवता वाले मन्त्र में जिस देवता की स्तुति हो वही उस मन्त्र का देवता होगा । अथवा प्रयोक्ता कामना से इस अनादिष्ट देवताविषयक मन्त्र का प्रयोग करता है, उस कामना का अधिपति देवता ही इस मन्त्र का देवता होगा । एक दूसरे के मतानुसार जिस देवता के अधिकार अथवा प्रकरण के अन्तर्गत अनादिष्ट मन्त्र आता है, वही उस मन्त्र का देवता होगा । जैसे यदि इन्द्र के अधिकार अथवा प्रकरण में कोई अनादिष्ट मन्त्र विद्यमान हो, तो उसका देवता इन्द्र होगा । इसी प्रकार अग्नि के प्रकरण में रहने पर उसका देवता अग्नि होगा । एक दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार अनेक देवता इस अनादिष्ट देवता सम्बन्धी मन्त्र के देवता होगे । जिस प्रकार लौकिक प्रयोग मे हम देखते है कि किसी द्रव्य के देवता अतिथि है और किसी द्रव्य के देवता पितृगण है, इस प्रकार पृथक्-पृथक् निर्देश के बाद अवशिष्ट द्रव्यो के देवता बहु सख्यक होते है अर्थात् साधारण रूप से देव, अतिथि पितगण सभी होगे । इस प्रकार आदिष्ट देवता — विषयक मन्त्रो के बीच जब अनादिष्ट मन्त्र रहेगें, उस समय उस मन्त्र के देवता साधारणरूप से सभी देवता होगे । ऐसे मन्त्र बहुदेवताविषयक या वैश्वदेव होगे। सर्वानुक्रमणी में कहा गया है, जिस मन्त्र में किसी देवता का उल्लेख नहीं है, उस के देवता इन्द्र है ।

पूर्व मीमासा दर्शन में मन्त्रों के अतिरिक्त देवता का पृथक्-पृथक् रूप स्वीकार नहीं किया गया है । इस दर्शन में 'मन्त्रमयी देवता' कहा गया है । अर्थात् यागयज्ञादि क्रियाकाण्ड में जब किसी वेद मन्त्र का उच्चारण होता है, तो उस मन्त्र के रूप मे ही देवता का आविर्भाव होता है । मन्त्र के अतिरिक्त देवता की कोई पृथक् सत्ता, विग्रह अथवा रूप नही है । कुमारिल भट्ट ने अपने 'तन्त्रवार्तिक' ग्रन्थ में कहा है कि तीन उपायो के द्वारा हम मन्त्र के देवता का निर्णय कर सकते हैं । वे है तद्धित प्रत्यय, चतुर्थी विभक्ति और मन्त्र का वर्णन ।

अन्त में देवताज्ञान की प्रशंसा की गई है । इन सभी देवताओ की उपासना योग, दक्षता, दम, बुद्धि, पाण्डित्य, तप तथा नियोग के साथ करनी चाहिये । जो ऋचाओ को जानते है, वे उसके देवताओ को भी जानने मे समर्थ होते हैं। जो मन्त्रो के देवताओ को जानते हुए उन्हे कर्म में प्रयोग करते है उन से प्रदत्त हवि को देवता आनन्द के साथ ग्रहण करते हैं । किन्तु जो देवताओ से अनभिज्ञ रहकर हवि प्रदान करते हे उनकी हवि को देवता ग्रहण नहीं करते हे उनकी हवि को देवता ग्रहण नहीं करते; अज्ञाता से दी गई हवि की देवता इच्छा नहीं करते। अतएव देवता के पूर्ण अनुसंधान के पश्चात् ही हवि प्रदान करनी चाहिये ।

अब देवताओ को जानने का महत्त्व वर्णन लिया जाता है । जो मन्त्रो के देवता को जानकर स्वयं पवित्र होने के पश्चात् वेद मन्त्र का अध्ययन करते है, वे पृथिवीलोक में रह कर भी देवताओ के द्वारा प्रशसित होते हैं । प्राचीनकाल से ही धन सम्पत्ति की इच्छा से ऋषियो ने छन्द के द्वारा देवताओं की शरण ली थी । सर्वानुक्रमणी में भी हम इसी की प्रतिध्वनि पाते हैं । जिन्हे सम्यक् देवताज्ञान हुआ है, वे अमर अनन्त महान् परम ज्योतिस्वरूप ब्रह्म में प्रवेश कर सकते हैं । ★

(साभार – विश्वज्योति)
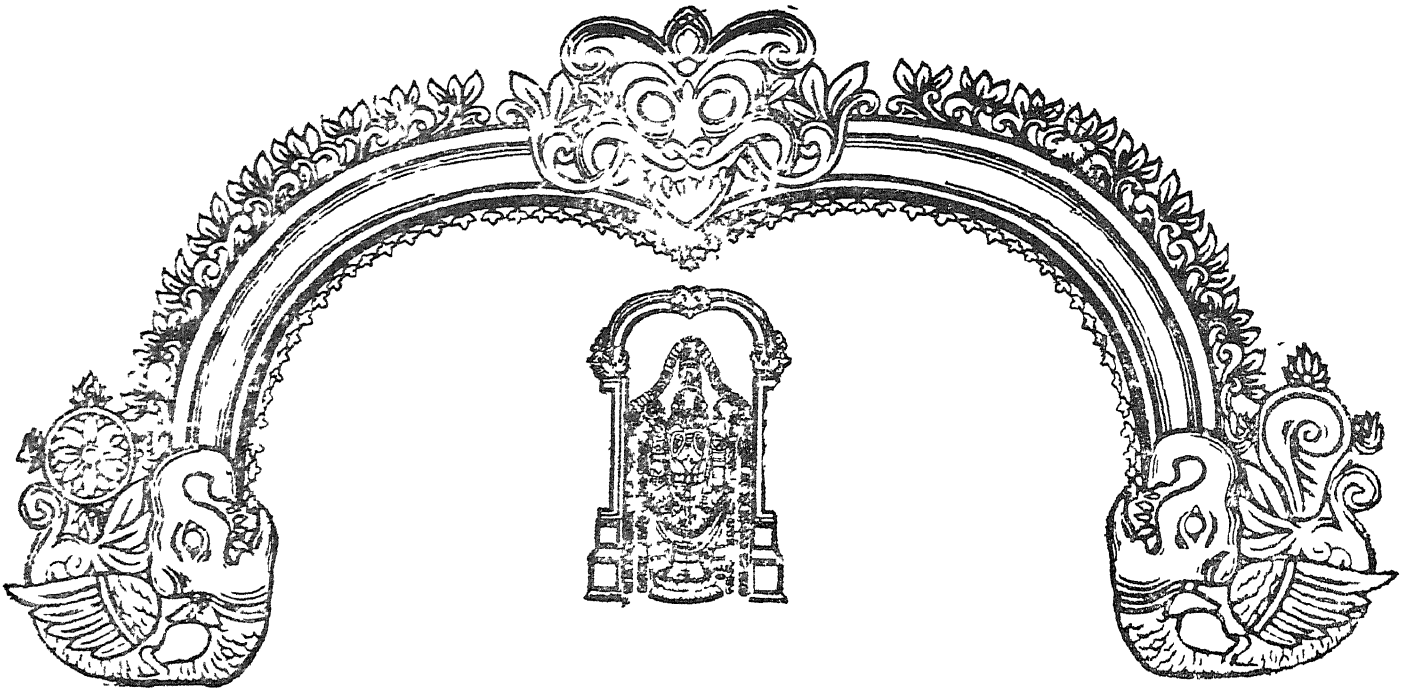
तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति.

तिरुमल अथवा तिरुपति में गृहवसति केलिए आरक्षण

ति. ति. देवस्थान ने यात्रियों को तिरुमल तथा तिरुपति में आवास वसति केलिए अनेक सुविधाओ का प्रबध किया है। तिरुमल पर करीब ५०० सुविधाजनक (Furnished) काटेज तथा मुफ्त धर्मशालाएँ और तिरुपति में १०० सुविधाजनक कमरे और धर्मशालाए हैं।

प्रतिदिन करीब १०,००० यात्री तिरुमल तथा तिरुपति का दर्शन करते है। जो यात्री सुविधाजनक गृहवसति प्राप्त करना चाहते हैं उनको पहले ही आरक्षण करा लेना चाहिए।

तिरुपति में एक दिन गृहवसति केलिए रु १२/–, रु १०/– या रु ६/– रिशेप्शन अफसर, ति. ति. देवस्थान, तिरुपति के पते, पर आरक्षण शुल्क भेजकर आरक्षण करा सकते हैं। उसीप्रकार तिरुमल पर गृहवसति केलिए आरक्षण (एक दिन केलिए रु. २०/– रु. १६/–, रु. १२/–, रु १०/–, रु. ९/– अथवा रु ५/–) शुल्क रिसेप्शन अफसर, ति ति. देवस्थान, तिरुमल के पते पर भेजकर आरक्षण करा सकते हैं।

तिरुपति अथवा तिरुमल पर गृहवसति केलिए कम से कम एक सप्ताह के अन्दर सम्बद्ध रिसेप्शन अफसर के पते पर डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा मनीआर्डर सहित निवेदन पत्र भेजना चाहिए।

१. गृहवसति केलिए आरक्षण करानेवाले यात्री के परिवार के सदस्यो की सख्या।

२. तारीख, जिसदिन गृहवसति अपेक्षित है। ३. चुकायी गयी रकम।

निवेदक के सदस्यो की सख्या तथा उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप उपस्थित गृहवसति के सुविधानुसार देवस्थान आरक्षण करेगा। अपेक्षित दिन केलिए गृहवसति नही प्राप्त हो तो आरक्षण शुल्क वापस भेज दिया जायगा। यदि गृहवसति प्राप्त हो तो निवेदक एक को आरक्षण कार्ड भेजा जायगा। तिरुमल अथवा तिरुपति पहुँचने पर गृहवसति के लिए यात्री को कार्ड पर सूचित देवस्थान के पूछ-ताछ कार्यालय में इसे दिखाना चाहिए। यदि कार्ड नही दिखा सकें तो कम मे कम मनिआर्डर अथवा बैंक ड्राफ्ट रसीद को दिखाना चाहिए। अन्यथा गृहवसति का प्रबन्ध नही किया जायगा।

यात्रियों से निवेदन है कि आरक्षण जिस दिन केलिए निश्चित है उस दिन प्रात: ८ बजे से लेकर दूसरे दिन प्रात: ८ बजे के अन्दर यात्री आवास सुविधा का अनुभव कर सकते हैं। यदि यात्री लोग इस निश्चित समय पर गृहवसति का अनुभव नहीं कर सके तो आरक्षण शुल्क वापस नही दिया जायगा। अथवा अन्य दिन केलिए आरक्षण बदला भी नही जायगा। आरक्षण केवल एक दिन के लिए और अधिकतम दो दिनो के लिए ही होगा। साधारणत: उस से बढकर अधिक दिनों केलिए आरक्षण नहीं दिया जायगा।

देवस्थान की धर्मशालाओं में मुफ्त में गृहवसति मिलती है। इस केलिए आरक्षण नहीं किया जाता है। जो यात्री पहले आयेंगे उनको उपस्थित गृहवसति के अनुसार कमरे दिये जायंगे।

कार्यनिर्वहणाधिकारी,
ति. ति. देवस्थान, तिरुपति

मधुरकवि आळवार

मधुरकवि जन्म तिरुक्कोलूर नामक पुण्यस्थल में चैत्रमास, चित्रा नक्षत्र में अरुणोदय के समय में हुआ। ये सामवेदी और पूर्व-शिखा वाले ब्राह्मण थे। बाल्यावस्था में ही समस्त शास्त्रों में विद्वत्तता प्राप्त कर मधुरवाना नामक उपाधि प्राप्त की। इसलिए इनका मूल नाम लुप्तप्राय होकर मधुर कवि नाम ही विश्रुत हुआ। सचमुच इनकी कविताओं का श्रवण करनेवालों को मधुर रस का स्वाद अवगत होगा।

ये सांसारिक बन्धनों को तोडकर विरत भाव से विष्णु भक्ति और योग निष्ठाओं से प्रभावित होकर देशाटन में प्रवृत्त हुए। अन्त में ये सप्त पुण्य पुरियों में अन्यतम अयोध्या नगरी को अपने लिए उचित निवासस्थान समझकर कुछ समय तक वही रहे।

एक दिन रात को ये तिरुक्कोलूर के भगवान का ध्यान करते हुए दक्षिणी दिशा में अपनी दृष्टि चलाते खडे हो गये। उस समय एक दिव्य ज्योति जो आकाश तक फैली हुई थी, इनकी दृष्टि में पडी। इनको शंका हुई कि कोई गाँव या शहर जल रहा हो या दावानल उठा हों। एक दम इस दृश्य के कारण वे अवाक् खडे रहे। तीन दिनों तक यह ज्योति उनकी दृष्टि में दीख पडी थी। यह देखकर आळवार अति विस्मित होकर उसके समीप में जाकर मूल तत्व को जान लेना अत्यंत आवश्यक समझते थे। इसलिए ये उस ज्योति को लक्ष्य करके उसी दिशा में चलने लगे।

अनेक गॉव वन, पहाड, नदी-नालों के पार करते हुए अन्त में आळवार तिरुनगरी में पहुँचे।

वहाँ के अवतारी पुरुष 'शठकोपन' (नम्माळवार) मुनि की दिव्य मूर्ति के दर्शन किये। इनकों दृढ विश्वास हुआ कि यही मूर्ति ज्योतिर्मय बनकर इनकी दृष्टि में पड रही थी। निकट आने के बाद ही ज्योति का स्वरूप दीख पडा और इनके भ्रम और शका दोनों दूर हो गये। तब से ये श्री वैष्णव तिलक शठकोप मुनि के प्रति निपट भक्ति रखकर उन्हें अपने परमाचार्य मानकर सर्वदा उनका ध्यान और स्तवन् करते रहना अपना पवित्र लक्ष्य समझने लगे।

शठकोपन अथवा नम्माळवार ने मधुर-कवि की भक्ति श्रद्धा देखकर उन्हें पच सस्कार से विभूषित कराके परतत्व, व्यूह विभव, अंतर्यामित्व आदि की सांसारिक शिक्षा देकर वेद-पांचरात्र पुराण-स्मृति आदि से युक्त अर्चावतार को प्रमाणित करके द्रविड वेद का उपदेश किया। इनके अलावा वेद-सार युक्त चार दिव्य प्रबन्धों की शिक्षा दी।

मधुर कवि ने भी उनसे प्राप्त विद्याओं का बडी श्रद्धा से मनन-पाठ करके सर्वदा लय, ताल युक्त सगीत से सकीर्तन करते थे।

यह आळवार अपने परमाचार्य नम्माळवार कृत तिरुवाय् मोळि को ही सब से श्रेष्ठ वेद-तुल्य मानकर उसीका गान करते थे।

उसे इन्होंने अपने परमाचार्य की मूर्ति बनाकर उसे तिरुनगरी में प्रतिष्ठापित किया। उसकेलिये पूजा-पाठ पर्व-उत्सव आदि मनाते थे। इन्होंने नम्माळवार को ही अपने लिए सब कुछ मानकर अतुलनीय गुरु भक्ति के प्रभाव से "कन्नि नुण् शिरुत्ताबु" शीर्षक भक्ति-पुंज लघु-प्रबन्धम् की रचना की। इस भक्ति प्रबन्धम् का "नालायेर दिव्य-प्रबन्धम्" में विशिष्ट स्थान है।

अन्त में इन्हों ने अपने परमाचार्य के अंतरंग और अनन्य शिष्य के रूप में प्रख्यात होकर सन्मान के साथ विष्णु पद प्राप्त किया। *

श्री टी. ई. एस. राघवन्
मद्रास—१७.

यात्रीगण कृपया ध्यान दें

देवस्थान के अधिकारियों को यह मालुम हुआ कि कुछ धोखेबाज लोग भगवान के प्रसाद के रूप में मंदिर के बाहर नकली लड्डू बेच रहे है। वे वास्तव में भगवान के प्रसाद नहीं है। भगवान को भोग लगाये हुए प्रसाद मंदिर के अन्दर और मन्दिर के सामने स्थित आन्ध्रा बैंक के काउन्टर में ही प्राप्त होते हैं। यात्रीगण कृपया भगवान के असली प्रसाद को मन्दिर और आन्ध्रा बैंक के काउन्टर से ही प्राप्त करें।

(पृष्ठ 11 का शेष)

दिनो मे आनद की तरगे, उठानेवाले पदार्थ वियोग के दिनो में उसे देखकर दु ख होना स्वाभाविक है। वियोगी गोपियाँ अपने उजड़े हुए नीरम जीवन के मेल में न होने के कारण वृंदावन के हरे-भरे पेड़ो को कोसती है —

" मधुबन ! तुम कत रहत हरे ? "
विरह वियोग श्याम सुंदर के ठाढे क्यों न जरे ?

इसी प्रकार रात उन्हे सापिनी सी डसने लगती है। सूरदास जी का विहार स्थल जिस प्रकार घर की चार दीवार के भीतर तक ही सीमित न रहकर यमुना के हरे-भरे कछारो, करील के कुजो और वनस्थलियो तक फैला है। इसी प्रकार विरह वर्णन भी "वैरिन भई रतियाँ" और "सापिन भई सेजिया" तक ही न रहकर प्रकृति के खुले क्षेत्र के बीच दूर-दूर तक पहुँचता है। मनुष्य के आदिम वन्य जीवन के परपरागत मधुर सस्कार को उद्दीप्त करनेवाले इन शब्दो में कितना माधुर्य है —

" एक बन ढूढी सकल बन ढूढौ कतहुँ न श्याम लहौ । "

ऋतुओ का आना-जाना उसी प्रकार लगा है। प्रकृति पर उन का रग चढ़ता-उतरता सा दिखाई पडता है। भिन्न-भिन्न ऋतुओ की वस्तुए देख जैसे गोपियो के हृदय में क्षोभ उत्पन्न होती है। वैसे ही क्या कृष्ण के हृदय में क्यों नहीं उत्पन्न होती? जान पडता है कि ये सब प्राकृतिक दृश्य उधर जाते ही नहीं है जहाँ श्रीकृष्ण बसते हैं। सब बृदावन में ही आ-आकर अड्डा जमाते हैं। अपनी अंतर्दशा को ऋतु सुलभ व्यापारो के बीच बिंब-प्रतिबिंब रूप में देखना भावमग्न अतःकरण की एक विशेषता है। पावस के प्रसग मे 'सूर' ने बहुत अच्छा वर्णन किया है। "निसि दिन बरसत नैन हमारे।" कृष्ण विश्लेष से दिन रात आँखो से वर्षा की झडी लगी रहती है। यह हिन्दी जगत में प्रसिद्ध पद है। विरहोन्माद में भिन्न-भिन्न प्रकार की उठती हुई भावनाओ से रजित होकर एक ही वस्तु नाना रूप में दिखाई पड़ती है। पपीहा कभी तो अपनी बोली के द्वारा प्रिय का स्मरण करा कर दु ख बढ़ाता हुआ प्रतीत होता है और कभी सम दुःख भोगी के रूप में अत्यत सहृदय जान पडता है। भावोद्रेक और कल्पना के इतना घनिष्ट सबंध है कि काव्य मीमाँसक ने दोनो को एक ही कहना ठीक है "कल्पना आनद है"

वैसे गोपियां मथुरा से कुछ ही दूर पर पड़ी विरह से चडपडा रही है पर कृष्ण राज सुख के आनंद में फूले न समा रहे हैं। रहस्यवादी कवियो की तरह सूरदास ने भी कभी-कभी इस लोक का अतिक्रमण कर आदर्श लोक की ओर सकेत करने लगते हैं —

" चकई ! री चरन-सरोवर जहाँ न प्रेमवियोग
निसि दिन राम-काम की वर्षा भयरुण नहीं दुःख सोग । "

सूरसागर मे कोई रागिनी छूटी न होगी इस से संगीत प्रेमियो के लिए बड़ा भारी खजाना है। नाद-सौंदर्य के साधनों, अनुप्रास आदि शब्दालकार भी है। सूर का हृदय प्रेम की नाना उमगो का अक्षय भंडार प्रतीत होता है। श्री कृष्ण राज भवन में जा पहुँचे हैं। गोपियो की वियोग दशाओ का संचार उसके भीतर है। कौन गिन सकता है?

कृष्ण का एक सखा था उद्धव! वह निर्गुण के उपासी था। श्री कृष्ण को उसका घमंड दूर करना था। निर्गुण उपासना के सामने साकार उपासना की उपेक्षा करता था। इसलिए श्रीकृष्ण उद्धव को गोकुल भेज दिया कि वे अपने ज्ञान मार्ग का उपदेश देकर गोपियो को समझा-बुझा दे।

उद्धव को देखकर गोपिया उस पर टूट पडती है, क्यो कि उनको भी अक्रूर समझ कर, किन्तु जब उन्हें मालूम हो गया कि ये कृष्ण के सखा हैं। ब्रह्म ज्ञान के भी दो मार्ग है एक सगुण दूसरा निर्गुण। निर्गुणोपासना का उपदेश केवल शुष्क ज्ञान है। भडकीले शब्दो में कहा गया कोरा बुद्धिवाद है। साकारोपासना ज्ञान सरस है, मानव हृदय को सुबोध। "जाके रूप रेख कुछ नही" भला वह देखा कैसे जाता है! देखना भी आँखो से नहीं बल्कि और वे मूँदकर! कितनी असंभव बात है। और मानेगा कौन इस बात को जिसका कोई शरीर ही नहीं, आकार ही नहीं, वह समझ में कैसे आ सकता है। मानव हृदय में इस प्रकार के सूखे और नीरस उपदेशो का कुछ भी असर नहीं हो सकता। यह अव्यक्त और अनिर्दिष्ट स्वरूप उसके ध्यान में नही आता, इसलिए भक्ति मार्ग सगुणोपासक उस परमात्मा के साकार स्वरूप को ही भजते हैं।

गोपिया श्री कृष्ण को ईश्वर मानती है उन्हीं के प्रेम में रंग गयी है। जब श्रीकृष्ण अपने सखा के द्वारा योग का सदेश भेजा तो वह उद्धव को मीठी चुटकियों से उन्हे सताती है। गोपियां कहती है कि स्त्रियो को भी कहीं जोग सिखलाया जाता है। "ऊधो कहा कथत विपरीति। जुवतिन जोग सिखावन उससे यह तौ उल्टी रीति।" अपने रूप-रग का वर्णन कर साफ़ कहती है हमारी तो अवस्था रास-रंग की है—

लक्ष्मी की लीला

लक्ष्मी! तेरी लीला अनोखी है!
लक्ष्य भी अद्भुत व विचित्र है!!
तू गोरी है — पर
तेरा पति काला है!
स्थिर नहीं रहती किसी जगह पर!
दृष्टि नहीं डालती नेक व्यक्ति पर!
जाती है जब तेरे पीछे हम चलते!
आती है जब तेरी परवाह न करते।
सज्जन करते हैं तेरी प्रार्थना!
दुर्जन को मिलती है तेरी करुणा!
बहू विद्या पर इतना क्रोध क्यों?
बहुत समय वहाँ न रहना क्यों?
आधार हैं हमेशा तू ही हमारा।
अनादर होता है तेरे बिना हमारा।
क्यों करती है दुष्टों की मदद?
क्यों देती हैं श्रेष्ठों की विपद?
सुखमय जीवन है तेरा,
दुखपूर्ण जीवन हैं हमारा
मन देती तो धन नही देती!
धन देती तो मन क्यों फेरती?
रंक भी राजा बनेगा तेरी कृपा से,
राजा भी बन जाएगा तेरे क्रोध से।
विचित्र हैं तेरा काम! — इसलिए
अमर हैं तेरा नाम!

श्री के. एस. शंकरनारायण,
कल्पाक्कम्.

गोपिया अपने बीते हुए सुख की याद करती हुई अपने प्रेम का विचार कहती है —

"जो पहिले रग - रगी श्यामरग तिन्ह न चढ़े रंग आन" क्या करे हम विवश हैं हम तो कृष्ण के रग में रग चुकी हैं। उसी प्रेम पयोधी में डूबी हुई गोपिकाएं सब कुछ कहने में जरा भी हिचकती नहीं है। अब हमारा मन निर्गुण ब्रह्म में कैसे लगता है। इस योग को हम "ओढे कि दसावै" प्रेमी को भी योग रुचता है ?

जाओ जाओ तुम्हारा योग व्रज में किसी को नहीं चाहिए। सगुण को छोड़ निर्गुण को कौन भजेगा। "जो ठगौरी व्रज न बिकै है।"

यह व्यापार तिहारो ऊधो ऐसोई फिरि जै है। आखिर यह भी कह देती है – तुम स्वयं अरसिक हो, सो रस की बात मधुप नीरस सुनु रसिक होत सो जानै" गोपिकाओं के मन तो हरि दर्शन की भूखी है। वे योग ज्ञान को लेकर क्या चाहे ? उन्हे तो योग की बातें तो जरा भी अच्छी नहीं लगती है। कृष्ण की राह देखते-देखते उनका मन जरा भी ढीला नहीं पड़ता है। "ऑखियाँ हरि दर्शन की भूखी कैसे रहै रूप रस रांची ये वातिया सुनि।" आखिर गोपियां ऊधो से छिड़कर कहती है कि यह सदेश भेज रहा है। जब रास खेल रहे थे तब योग कहा किस कोने में छिपा पड़ा था ? स्त्री सहज ईर्ष्या से जल उठती है और ऑखो से चिनगारी उगलती हुई कहती है — हमें योग का सदेश भेज रहा है वहाँ कुब्जा से प्रेमालाप कर रहा है। इस तरह गोपिकाएं विरह में तड़पने लगी।

"ऊधो जाके माथे भाग। कुबिजा को पट-
रानी कीन्हीं, हम ही देत वैराग
"बन्यो बनायो सग सखी ही ! वैरे हँस
वै काग।"

यहाँ सूरदास जी ने शब्दो को रखने में कमाल किये है। जहाँ व्रज - वनिता शब्द से सुंदरता का भाव व्यक्त होता है और कुलीनता भी इस के ठीक विपरीत चेरी शब्द से भोंडापन, रुखापन साफ जाहिर होती है। गोपिकाएं यह भी कह देती है —

"लौडी के घर डाडा बाजी श्याम रंगे अनु-
राग ?"

गोपिकाओ का प्रेम अटल है, वह कभी उससे विमुख होना नहीं चाहती है।

श्री कालहस्ती स्थित श्री पार्वती परमेश्वर. फोटो. श्री एस. वी के. एस. श्रीनिवासन्, तिरुपति.

ईर्ष्याग्नि और विरहाग्नि से उनके मुंह से न जाने क्या - क्या वाक्य निकलते है —

"हम को जोग भोग कुब्जा को काके हिय समात" सूरदास से "ऐसो पति आखिर अत्यंत रोष के कारण यह अग्निवर्षा भी कर देती है — "जा जा रे भौरे ! दूर दूर। रंग रूप अरु एक हि मरत मेरो मन कियो चूर चरा जौ लौ गरज निकट रहै तोलौ काज सरै दूर-दूर।"

ऊधो की सभी उक्तियाँ गोपियो के अकाम्य तर्कों के सामने व्यर्थ चली गयी, उनके प्रेम के प्रवाह में वे बह गयी। आये थे ज्ञान सिखाने। सो ज्ञानवान तो सब भूल गए और प्रेम की शिक्षा पा गए। निर्गुण की नीरसता सगुण की सरलता को स्वीकार करनी ही पडी। अब प्रेम विह्वल ऊधो की दशा का चित्र भी — आये थे प्रवाह रोकने को पर खुद उस में बह गए, और साथ में योग और निर्गुण को भी ले डूबे। उद्धव गोप का वेष धारण कर लिया, और यदुपति आदि राजसी नामों को छोडकर गोपाल, गोसाई आदि कहने लगे।

"प्रेमाश्रु बह चले वाणी गद्गद हो गयी।
सूर श्याम भूतल गिरे, रहे नयन जय छाये।।"

श्रीकृष्ण ने – पोछि पीत पट सो कह्यो "आये
जोग सिखाया ?"

उद्धव इस व्यग का क्या उत्तर देते हैं; मौन रहने के सिवाय उपाय ही क्या था ? इस तरह भक्त सूरदास सगुण, साकार भक्ति को अपनी सरस वाणी मे प्रतिपादित किया है। *

मूल्यः ०–५०

रजिष्टर नं. एच/टी आर पी/११

तिरुपति में विराजमान श्री गोविन्दराज स्वामी जी का फ़्लोत्सव

ता० ७-२-७९ से ११-२-७९ तक

साधो ऐसा ज्ञान कहां पावे

श्री केशवदेव कीर्तनकार [पुजारी]
कवांट
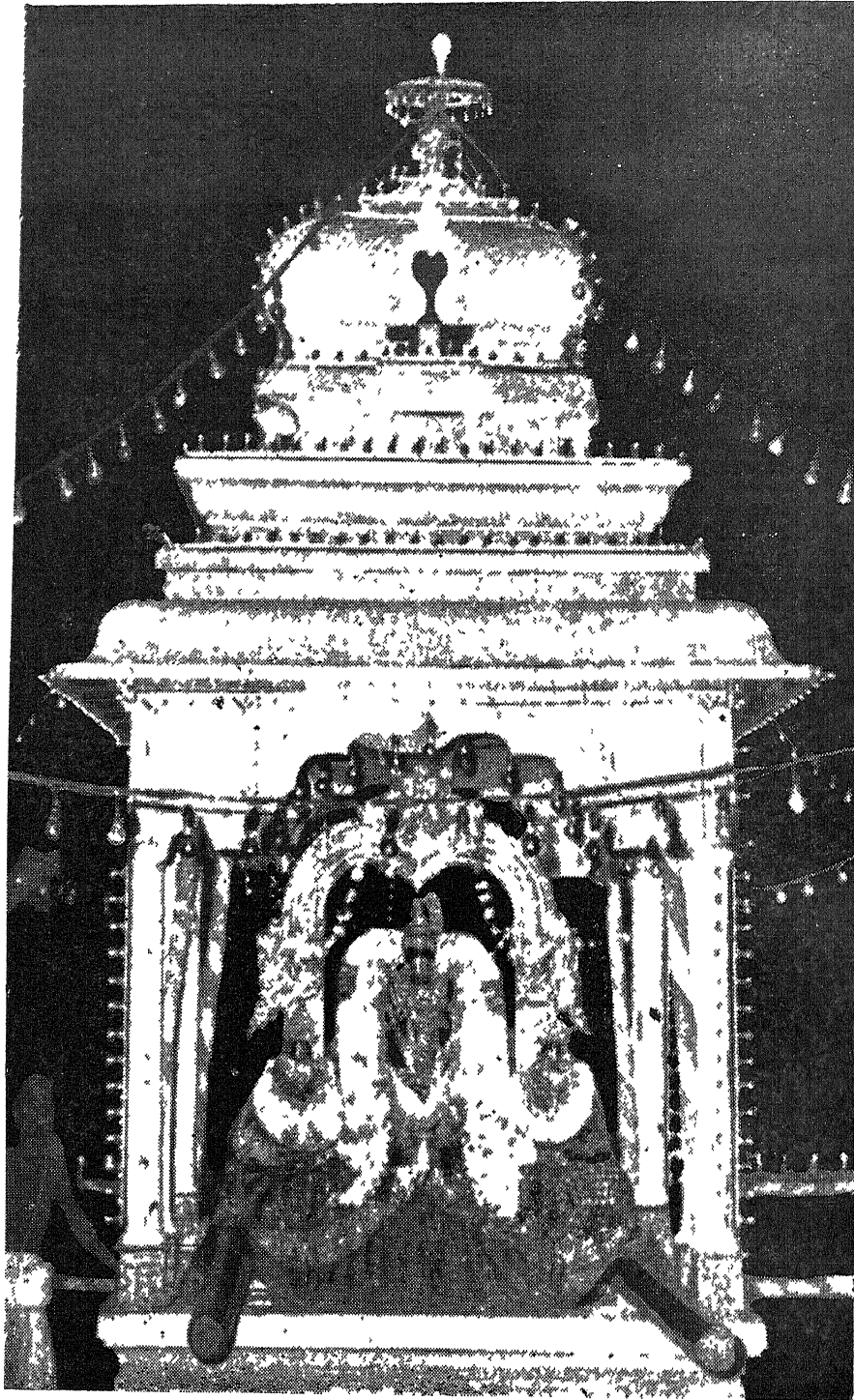
इसभूतल पर संत श्री कबीरदास जी एक उच्च कोटी के संत हो गये हैं। इन्होने उल्ट वाणी में भजन पद की रचना की है। इनकी विशेषता यह है कि ये सभी आध्यात्मिक स्वरूप वाले है। इन्हीं श्रेणी में से एक भजन पद उसके स्वरूपार्थ के साथ यहाँ दर्शा रहे हैं।

साधो ऐसा ज्ञान कहाँ पावे।
माता मेरी पहले मर गई,
पीछे जन्म हमारो।
पिता हमारे व्याहन चले मै हूँ बरात में जाऊँ।
साधो ऐसा ज्ञान कहाँ पावे ॥

सासु कआरी नणद घर बेश. बहुजी मंगल गावे
कुटुम्ब हमारा बडा अनोखा, सुनते अचरज आवे
साधो ऐसा ज्ञान कहाँ पावे ॥

बेटी हमारी चली सासरे नव मन अंजन लगायो।
ऊँट घोडा के क्या है गिनती हाथी बगल में दबायो।
साधो ऐसा ज्ञान कहाँ पावे ॥

कहत कबीर सुनो भाई साधो, भेद लखीना पावे
इसी भेद को जो कोई जाने, सोई परम पद पावे॥
साधो ऐसा ज्ञान कहाँ पावे ॥

सत श्री कबीर साहेब कहते है कि आत्मकल्याण अथवा भगवत् प्राप्ति के मार्ग की जो कोई भी साधना करते हैं या करने की इच्छा रखते हैं, उन्हीं को कबीर साहेब ने "साधो" शब्ध से संबोधित किया है।

साधो ऐसा ज्ञान कहाँ पावे यहाँ साधो शब्द स्वरूप वाचक है, साधो शब्द साधु, भक्तजन और सज्जन वाचक है—

कबीर साहेब कहते हैं कि मानव जीवन में यदि कुछ साध्य करना हो तो वह यह है कि — ईश्वर प्राप्ति की साधना करने के लिये साधक को सर्वप्रथम आत्म ज्ञान की प्राप्ति करनी होगी।

माता मेरी पहले मर गई
पिछे जन्म हमारो ॥

कबीर साहब माता को यहाँ वासना शब्द से सबोधन किया है वासना का क्षय केवल आत्म ज्ञान द्वारा ही होता है।

आत्म ज्ञान और ब्रह्म ज्ञान की भूमिका ही ऐसी है कि वहाँ वासना का वास हो ही नहीं सकता है।

कबीर साहेब ने कहा कि माता मेरी पहले भी गई वह इस प्रकार से कि आत्म ज्ञान निज स्वरूप का ज्ञान है। स्वः आत्म स्वरूप अर्थात जीव स्वयं के मूल स्वरूप को जब जान लेता है तब ही वह आत्म स्वरूप है, तात्पर्य यह कि अत्म ज्ञान होना अर्थात अपने स्व के साथ स्वरूप आत्मा को जान लेना।

कबीर साहेब कहते हैं कि सर्वप्रथम आत्मज्ञान प्राप्त करने केलिये स्वय के जीवन मे सर्वप्रथम प्रयत्न करके आत्मज्ञान सपादन कर लो।

श्री कबीर साहब का कहना है कि जीव मात्र ईश्वर का अंश है, जब वह स्वयं के सत्य स्वरूप आत्मा को जान लेता है तब वह भगवान का पुत्र है।

आत्म ज्ञान के पश्चात परमात्मा ज्ञान की भूमिका सर्जन करने के लिने उस ज्ञान की उसे लगन लगती है। श्री कबीर साहेब जिसे :—

"पिता हमारे व्याहन चले मै हूँ बरात में जाहुँ" के सबोधन से कहा है। ईश्वर की इस प्रकार से लगनी लगने वाला जो कोई भी तो वह ब्रह्म ज्ञान के साथ स्वय के लगन की स्थिति रखता है।

ईश्वर स्वय ब्रह्म स्वरूप है जिससे उसकी लगनी ब्रह्मज्ञान के साथ होना स्वाभाविक है।

आत्मा परमाामा का पुत्र है परमात्मा अंशी है, और आत्मा उसका अश है।

ससार में जो जन्म मरण का दुःख है, वह वासना के क्षय होने पर ही मिटता है। आत्मज्ञान के द्वारा ही वासना का क्षय होता है।

श्री कबीर ने माता इसलिये कहा है कि पहले तो वह मेरी माता थी, क्योंकि ससार में कोई भी कार्य करो तो सर्वप्रथम उस कार्य की वासना ही होती है, वासना का द्वितीय स्वरूप जीव इच्छा है।

कबीर साहब का यहाँ पर कहना है कि जीव स्वय की इच्छा से जो कोई भी कार्य करता है, वे सभी वासना वाले होते हैं, आत्म ज्ञान एक अद्भुत ज्ञान है जो अज्ञान को उसके मूल से छेदन करता है। जहाँ तक वासना का उद्भव है वहाँ तक अज्ञान है और जहाँ तक अज्ञान हाँ तक जीव दशा है।

जीव की अज्ञान अवस्था को दूर करने के लिये ही श्री कबीर ने यहाँ आत्म ज्ञान एवं ब्रह्म ज्ञान का उपदेश दिया है।

आत्म ज्ञान एवं ब्रह्म ज्ञान यह स्वरूप वाचक है इसमे उसका वर्णन यहाँ करना असम्भव है। क्योंकि वह स्थिति वाचक है।

इसके पश्चात कबीर साहब कहते है कि मैं उसी मार्ग को प्राप्त करने का मार्ग बताता हूँ।

"साधो ऐसा ज्ञान आप कहाँ पावे"

अर्थात ऐसा ज्ञान कहा से प्राप्त करोगे?

"सासु कंआरी नणद घर बेटा! बहूजी मंगल गावे"

कुटुम्ब हमारा बडा अनोखा।
सुनते अचरज आवे ॥

कबीर साहब ने इसे प्राप्त करने का मार्ग यहाँ बताया है।

यहाँ सासु रूपी सुषुम्ना नही है। सुषुम्ना में आत्मज्ञान की साधना हो सकती है। सुषुम्ना में प्रेम करना भक्ति की भी साधना हो सकती है। सुषुम्ना द्वारा आत्मज्ञान और उसके पश्चात ब्रह्म ज्ञान का उद्भव होता है। इसी से सुषुम्ना को कबीर साहब ने सासु शब्द से व्याख्या की है। वह भगवान रूपी पति की प्राप्ति करती है और भगवान के पुत्र आत्मा की भी प्राप्ति कराती है।

प्रत्येक मानव के शरीर मे तीन प्रवाह प्रवाहित हो रहे है। उनमें सुषुम्ना सूक्ष्म रूपिणी है। सूक्ष्म श्वास जब चल रहा तो समझना कि यही सुषुम्ना स्वर प्रवाहित हो रहा है। श्री कबीरदास जी का कहना है कि इस सुषुम्ना स्वर को अभ्यास द्वारा लम्बी अवधि के लिये चलित रखना। क्यों कि इसी स्वर मे चिंतन स्मरण अथवा ध्यान करना है और यहाँ विशुद्ध भाव रूप होता है।

आत्म साधना के कार्य के लिये लंबे समय तक अभ्यास करने पर एक दिव्य ज्योति के रूप में आपकी आत्मा के स्वरूप का दर्शन प्राप्त होगा। इस आत्म ज्ञान के प्राप्त होने पर अज्ञान का पर्दा अलग होगा, और आप आत्म स्वरूप में स्थिर होगे। स्व का ही स्वरूप में स्थिर होना ही कबीर साहब ने आत्म ज्ञान कहा है।

आत्म ज्ञान के परिपक्व होने के पश्चात ब्रह्म ज्ञान की स्थिति का सर्जन होता है श्री कबीरदास जी ने इसी को "मै हूँ बरात में जाऊँ" पंक्ति से संबोधित किया है।

नणद घर बेटा वह इस प्रकार से कि नणद रूपी पिंगला नाडी स्वर है। यह स्वर उग्र है। इस स्वर में किया गया कर्म का परिणाम नणद घर बेटा जैसा है। तात्पर्य यह कि मानव में काम, जैसा है। तात्पर्य यह कि मानव में काम, क्रोध, लोभादि जो विकार है वे सब बेटे जैसे हैं, ये इस स्वरूप वाले पुत्र के समान है। ये मानव को कोई भी सत्कार्य नहीं करने देते, नहीं भगवद्भजन करने देते हैं इस स्वर में आत्मज्ञान का उद्भव नहीं हो सकता। इस से श्री कबीर साहब ने इस स्वर में शुभ कार्य करने का निषिद्ध किया है।

"बहू जी मँगल गावे" वह इस प्रकार मे कि बहू जी रूपी इडा नाडी स्वर है इस में मानव जो भी कार्य करेगा वे सभी मंगल दायक होगे। अर्थात शुभ कार्य भजन कीर्तन के रूप में होगें ब्रह्म रग भी शुभ कार्य संपादित होगें आप मगल अनुभव करेंगे। आत्म ज्ञान के बिना मगल का अनुभव नही हो सकता है।

इन तीनों नाडी स्वरों में सुषुम्ना सर्वश्रेष्ठ है। इस स्वर में साधना करने से आत्म ज्ञान की प्राप्ति होती है। ऐसा कबीर साहब का मत है।

श्री कबीर साहब ने आगे कहा कि "कुटुम्ब हमारा बडा अनोखा सुनते अचरज आवे"

ससार में हम देखते है कि सासु कुआरी नही हो सकती हैं। किन्तु कबीर साहब के मतानुसार सासु कुंआरी हैं। क्यो कि सुषुम्ना स्वर जब अति सूक्ष्म रूप मे–स्थिर हो जाता हैं तब देह दशा शून्य हो जाती हैं। तथा जगत से सबन्ध विच्छेदित हो जाता है। क्यों कि केवल आत्म रूप ही अवशेष रहता हैं इसे ही कबीर साहब ने सासु कुंआरी शब्द से सबोधित किया है।

बेटी हमारी चली सासरे,
तव मन अजन लगायो ॥
ऊँट घोडा के क्या हैं, गिनती।
हाथी बगल में दबायो ॥

कबीर साहब कहते हैं कि हमारा कुटुम्ब बडा अनोखा है। ससार में बेटी जब ससुराल जाती हैं तो आँखो में काजल लगाकर सजधज कर जाती है। किन्तु यहाँ बेटी दूसरे प्रकार की है। यहां बेटी को उन्होंने दो स्वरूप से वर्णिति किया है।

प्रथम स्वरूप आत्मज्ञान की भूमिका में होता है। उसमें नौ भक्ति का समावेश हो जाता है। इसे ही कबीर साहब ने "नवमन अजन लगायो" शब्द से कहा है बेटी का प्रथम स्वरूप भक्ति है" नव मन अंजन इस प्रकार कि इसमें नवधा भक्ति निवास करती है। अंजन शब्द निवास का सूचक है।

ऊँट घोडा के क्या है गिनती हाथी बगल में दबायो। वह इस प्रकार की वेगपूर्वक चलने वाली प्राणी ऊट, घोड़ा इत्यादि हैं। कबीर साहब कहते हैं कि आत्म ज्ञान का मार्ग इतना सुदृढ एवं प्रबल है कि दूसरा कोई भी वर्ग इस के समान वेग से नही चल सकता है।

इस भूतल पर सतों का मार्ग बहुत ही वजनी एवं शानदार है इसे आत्मज्ञानी ने परीक्षा अपने में धारण कियाहै। इसे ही कबीर साहब ने हाथी बगल में दबायो शब्द से सबोधित किया है।

बेटी हमारी चली सासरे ये शब्द कबीर साहब ने कटाक्ष रूप में कहे हैं वह इस प्रकार कि इस जगत में कितने ही लोग साधु सत होने का ढोंग कर रहे हैं। कबीर साहब कहते है कि आप इनसे ठगाना मत।

अंतिम में कबीर साहब कहते हैं कि इसी भेद को जो कोई जाने सोई परम पद पावे यहाँ भेद शब्द भगवत स्वरूप का वाचक है। आत्म ज्ञान और ब्रह्म ज्ञान द्वारा भगवान को जो कोई भी जान लेगा वही परम पद रूपी मोक्ष की प्राप्ति करेगा। *

श्री वैखानसाचार्य की उत्सव मूर्ति

फोटो: श्री ए के रामानुजम्, तिरुपति
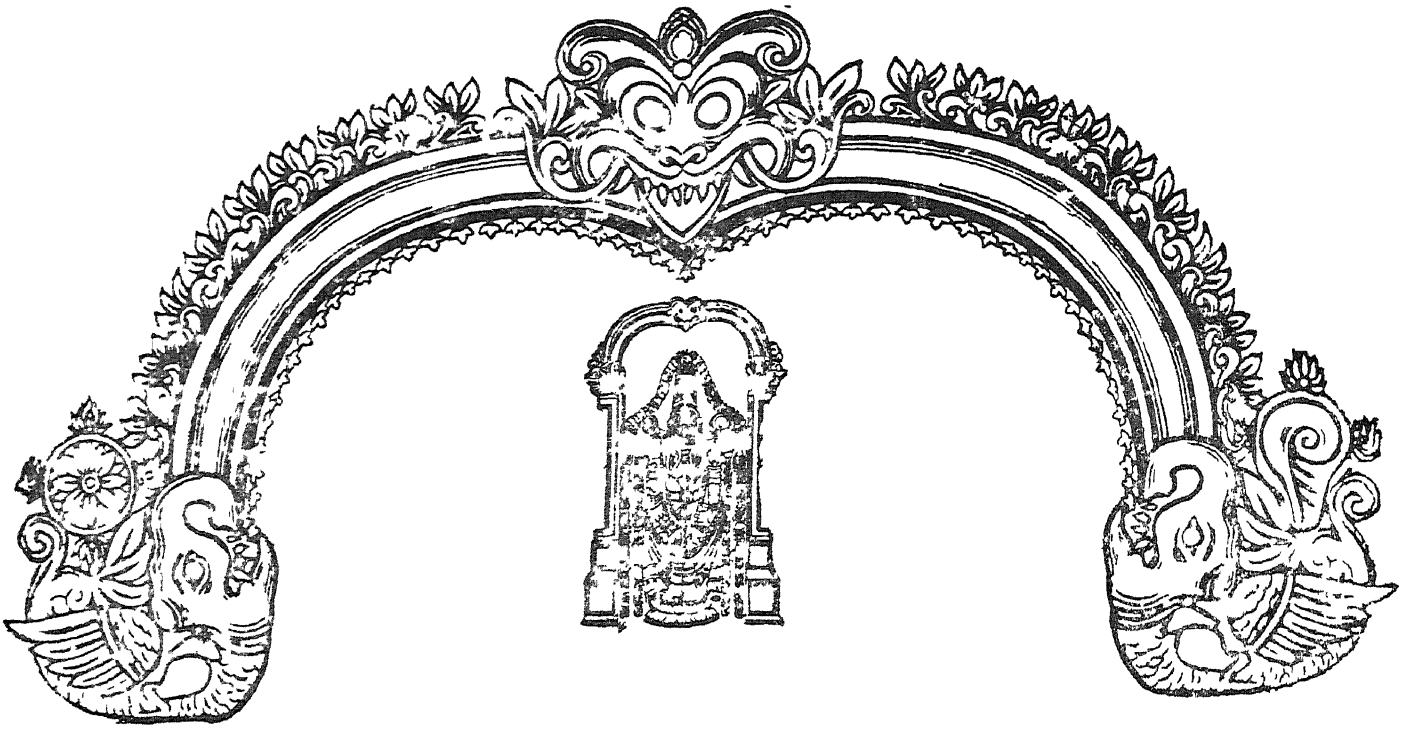
तिरुपति तथा तिरुमल यात्रा की यातायात - सुविधाएँ

भारत के किसी भी रेल्वे स्टेशन से तिरुमल तक रेल के सीधे टिकेट खरीदे जा सकते हैं। तिरुपति तक सीधी रेलगाडियों का प्रबंध भी है। जैसे कि मद्रास से (सप्तगिरि एक्सप्रेस, बडी लाइन), विजयवाडा से (तिरुमल एक्सप्रेस. बडी लाइन), काकिनाड़ा से (पेसजर गाडी बडी लाइन), हैदराबाद से (वेंकटाद्रि एक्सप्रेस, छोटा लाइन और रायलसीमा एक्सप्रेस, बडी लाइन), तिरुचिनापल्लि से (फास्ट प्रेसजर गाडी, छोटी लाइन) पाकाला, काड़पाडि, रेणिगुण्टा तथा गूडूर जैसे रेल्वे जंक्शनों से तिरुपति तक सुविधाजनक मिली जुली रेलों का प्रबंध है। भारत के किसी भी रेल्वे स्टेशन तक जाने केलिए तिरुमल से ही वापसी यात्रा का टिकेट भी खरीद सकते हैं।

मद्रास तथा हैदराबाद से तिरुपति तक नियमित विमान सेवा का प्रबंध है और हवाई अड्डे से उन यात्रियो को तिरुमल तक ले जाकर फिर वापस लाने केलिए एक विशेष बस का प्रबंध भी है। सुदूर प्रदेशों से रेल या बस से आनेवाले यात्रियों को तिरुमल पहुँचाने केलिए लिंक बसों का भी प्रबंध है। प्रातः काल से लेकर रात देर तक तिरुपति - तिरुमल के बीच हर ३ मिनट पर लगातार चलनेवाली बसो का प्रबंध है। ए. पी. एस. आर टी. सी. शाखा द्वारा तिरुपति - तिरुमल के बीच कान्ट्राक्ट कौरेज बसों का प्रबंध भी है। इस मे एक ट्रिप केलिए रु. १३५ देकर ४५ यात्री जा सकते है। तिरुपति से तिरुमल तक पैदल दो रास्ते भी हैं जो भव्य सुदर सात पहाडियों से होते हुए हैं। अनेक यात्रीगण अपनी मनौती के रूप में पैदल रास्ते से आनंद उठाते जाते हैं।

तिरुपति से तिरुमल तक दो घाटी रोड हैं जिन में से एक तिरुमल जाने केलिए द्वितीय तिरुमल से लौटने केलिए हैं।

व्यक्तिगत कारों के लिए भी तिरुमल पर जाने की अनुमति है। यहाँ पर टेक्सियाँ भी मिलती हैं।

कार्यनिर्वहणाधिकारी,

ति. ति. देवस्थान, तिरुपति.

वेदपठन का सेमिनार

तिरुपति मे स्थित श्री अन्नमाचार्य कलामन्दिर मे संपन्न वेदपठन के सेमिनार के बारे में हिन्दू-धर्म प्रतिष्ठानम् के कार्यदर्शी डा० डी अर्कसोमयाजी इस प्रकार अपने मत को प्रकट कर रहे हैं।

१) इस वेदपठन-सेमिनार के प्रबन्ध करने का मूल उद्धेश्य है कि प्रमुखत लोग हमारी प्राचीन वैदिक संस्कृति की ओर अपना ध्यान दे तथा उसके परिरक्षण करने का भरसक प्रयत्न करे।

२) पहले मै ति ति. देवस्थान के कार्य-निर्वहणाधिकारी को अपने हार्दिक धन्यवाद प्रकट कर रहा हूँ, जिनके हृदय में वेद शास्त्र तथा हिन्दू धर्म के प्रति अनन्य आसक्ति और गौरव है और जिन्होने इस सेमिनार के प्रबन्ध करने के लिए तुरत ही सानद अपनी सम्पति की। उस के बाद हमारे देवादाय कमिशनर को शत-शत धन्यवाद प्रकट करना मेरा पहला कर्तव्य है, जिन्होंने अनेक कार्यकलापो में व्यस्त रहने पर भी इस सेमिनार के प्रारंभ करने केलिए सहर्ष स्वीकार किया है। भगवान बालाजी से मेरी विनीत प्रार्थना है कि वे इन दोनो पवित्र महोदयो को आयुरारोग्य तथा सकल सपदाए प्रदान करें।

३) महोदय! यह बात अतिशयोक्ति नही होगी कि हिन्दू धर्म की जीवनाडी वेद ही है। मगर खेद की बात है कि हमारे देश में आजकल वेद तथा शास्त्रों केलिए पर्याप्त आदर नहीं प्राप्त है।

४) आधुनिक युग में वेद तथा शास्त्रों की हीनस्थिति का मुख्य कारण यह कहा जा सकता है कि आजकल वैदिक तथा शास्त्रों के पण्डितों केलिए कोई जीवनाधार ही नहीं है। एक प्राथमिक पाठशाला के अध्यापक को जितना वेतन प्राप्त होता है, कम से कम उतना भी वे नहीं प्राप्त कर रहें है। इस प्रकार का वातावरण सरकार या जनता केलिए भी श्रेयस्कर नहीं है। कांटों में फसे पुष्प के समान इन विद्वानो की विदत्ता व्यर्थ हो रही है। मेकाली ने भारत केलिए क्षिक्षा विधान ऐसा बनाया कि जो अंग्रेजी भाषा सीख लेता है उसे ही नौकरी मिलेगी। अतएव मेकाली की शिक्षा प्रणाली ने वैदिक तथा सस्कृत की सस्कृति पर एक ऐसा प्रहार किया जिसके फलस्वरूप दो शताब्दियो के बाद भी हम उस अग्रेज भाषा के प्रभाव से नहीं मुक्त हो सके है। उस शिक्षा विधान केलिए हम हर वर्ष करोडो रुपये खर्च कर रहे है। फिर भी हम यह अच्छी तरह जानते है कि विज्ञान के विकास में हम थोडी ही योग दे सके हें दूसरी ओर बेकारी समस्या दिन दिन बढती जा रही है। इसके साथ साथ कालेज तथा यूनिवर्सिटी के कैंपस पाठशालाए अनुशासन हीनता के केन्द्र बन रही है। इस अनुशासन हीनता को दूर करने केलिए क्या क्या उपाय किया जाय, इस विषय पर देश के बडे बडे विज्ञ तथा नेतागण सिर खपा रहे है। हर एक महीने में एक एक नया कालेज तथा हर एक वर्ष मे एक एक नयी। विश्वविद्यालय स्थापित किये जा रहे है। भगवान जाने इन विविध विद्या संस्थाओ का भविष्य। सब का एक ही प्रकार का विद्या विधान। आजकल के विद्या विधान में नैतिक मूल्यो का नामोनिशान ही नहीं है।

क्या यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि वास्तव में सरकार वैदिक सस्कृति तथा शिक्षा को प्रोत्साहन देना चाहती है? क्या सरकार वह काम नही कर सकेगी? क्यो नही जरूर। तो सरकार पत्रिकाओ में प्रकाशित करे कि वेद तथा शास्त्रो के प्रपूर्ण पण्डितो के लिए जीवन भर हर महीने रु. ५००/– दिया जाय। उसके बाद देखिए कि हजारो सस्कृत पण्डित हमारे सामने इकट्टे हो जायगे। इस प्रकार सरकार चार पांच वर्ष तक करें। बस हमारी वैदिक सस्कृति का पुनरुद्धार हो जायगा। इस केलिए जो खर्च होगा वह प्राथमिक पाठशालाओं केलिए किये जानेवाले खर्च से बहुत कम ही होता है।

६) कोई पूछ सकता है कि इस वैदिक संस्कृति की महत्ता इतनी है? इसकी महत्ता को प्रकाश में लाने केलिए ससार के सभी देशो में सशोधन कार्य रहे है। इससे बढकर वेदो की महत्ता और क्या होगी?

७) महाशय, वेदो के परिरक्षण केलिए ति ति देवस्थान के द्वारा कुछ योजनाओ का प्रबन्ध किया गया है। जैसे वेदो को टेपरिकार्ड करना वेदो का अनुवाद, वेद रक्षण स्कीम, कुमार अध्ययन स्कीम इत्यादि। इन के विषय में मै यो प्रकट करना चाहता हूँ। आजकल की परिस्थितियो मे टेप - रेकार्डिग भी अच्छा काम ही है। मगर मुझे इस विषय का डर है कि यह साधन वेदो के रक्षण केलिए उपयोगी होगा, न कि प्रचार तथा प्रसार केलिए। वेदो के अनुवाद के विषय में मेरी राय है कि यह कार्यक्रम महान संस्कृत पण्डितो के द्वारा ही कराना है। क्यो कि वेदो के पदजाल के अर्थो को समझना आसानी बात नही। उस के बाद वेद रक्षण साधान है जिस केलिए ति ति. देवस्थान ने हर वर्ष इस के लिए रु १० लाख देगा। यह तो अच्छी योजना ही है।

८) सबसे अच्छी योजना है, कुमार अध्ययन स्कीम। मेरी शका है कि जब तक यह आश्वासन नहीं दिया जाय कि वैदिक पण्डितो को नौकरी निश्चित रूप से मिलेगी अथवा कम से कम उन को हर महीने रु ५००/– दिया जायगा, तब तक वेदपण्डितो के पुत्र भी संस्कृत को सीखने केलिए कदम नही बढा सकेंगे।

भगवान बालाजी से हमारी प्रार्थना है कि वेदभाषा सस्कृत तथा वैदिक सस्कृति की दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो जाय और निकट भविष्य में ही इस की महत्ता से सारा विश्व परिचत हो जाय और हमारी प्राचीन वैदिक सस्कृति का पुनर्जागरण हो जाय।

मन्त्रिवर का भाषण

तिरुपति स्थित श्री अन्नमाचार्य कलामन्दिर में ता० २ – १२ – १९७८ को 'स्वाध्याय प्रवच' समावेश सपन्न हुआ। माननीय देवादाय मंत्रिवर ने इस समावेश का प्रारभ किया। इस अवसर पर भाषण देते हुए आप ने निम्नलिखित विषयो पर प्रकाश दिया:—

वैदिक पण्डितो के बीच में हिन्दू धर्म प्रतिष्ठानम् के आध्वर्य में प्रबंधित इस स्वाध्याय प्रवचन का प्रारंभ करना मे अपना सौभाग्य

समझता हूँ। मै ने सुना कि इस स्वाध्याय प्रवचन कार्यक्रम केलिए आन्ध्र प्रदेश से विशेषत. कोनसीमा से जो वैदिक पण्डितो की जन्मभूमि है, प्रकाण्ड वैदिक पण्डित महोदयो को आमत्रित किया गया। निर्विवाद रूप से हर एक हिन्दू यह मान लेता है कि हिन्दूधर्म का मूलाधार वेद ही है। वेदों के विषय में मेरी राय है कि वैदिक साहित्य एक आध्यात्मिक खनि है जो मानव जीवन के रहस्यो का उद्घाटन करनेवाले साधन है और जिसके विषय में बडे बडे वैज्ञानिक भी अनिभिज्ञ ही है। महर्षि वासिष्ट, जमदग्नि, भारद्वाज, विश्वामित्र जैसे ब्रह्मर्षियो की जन्मभूमि कहलाने का सौभाग्य सारे विश्व में केवल हमारे भारत को ही मिलता है। दूसरे शब्दो में कहा जाता है हमारे भारत में अगणित महान मन्त्र द्रष्टाओ का जन्म हुआ कि जिन्होने सासारिक सुखो की जाल में फसे हुए सामान्य मानव केलिए अगम्य, गूढ आध्यात्मिक विषयो का स्वय अनुभव कर ससार को भी दर्शाया है। इतना ही नहीं माक्समूलर इत्यादि वैदिक पण्डितो ने उद्घाटन किया कि स्पेश का रहस्य, मानव जीवन तथा प्राकृतिक तत्वो के सबध मे वेदो की अपेक्षा विस्तृत रूप से कहनेवाले कोई प्राचीन वैज्ञानिक अथवा विज्ञान ही नहीं है। वास्तव में ही वैदिक साहित्य तथा प्राचीन वेद पण्डितो के कारण सभी देशो के आगे हमारे देश का सिर ऊंचा हुआ है।

यह तो हर्ष की बात है कि आज भी वेद-वेदांगो के इस प्रतिकूल वातावरण में कतिपय महान वैदिक पण्डित विद्यामान है। और दु ख की बात है कि इन पारपरिक पण्डित तथा विश्वविद्यालय के आचार्यों के बीच में बडी खाई दिखाई पडती है। दुर्भाग्यवश ये दोनो एक दूसरे को समझने का प्रयत्न नहीं कर रहे है, परिणामत: इन दोनो में बडा पण्डित कौन है, इस के निर्णय कर लेने केलिए लोग असमज स में पड रहे है। यह तो मानना ही पडता है कि अंग्रेजी भाषा के संपर्क से हमारे दृष्टिकोण में नवीनता की झलक अधिकत दिखाई पडने पर भी हम ने अपनी भारतीय-संस्कृति की महत्ता को खो दिया है। अतएव इंग्लैड से एक अनीबीसेंट को यहाँ आकर कहना पडा कि भारतदेश ने अपनी आत्मा को खो दिया है और भारतवासियों को अपने वेदो के परिरक्षण करने की आवश्यकता है।

महोदय, अनेक शताब्दियो से वैदिक शास्त्र शिक्षा हमारे भारत में क्षीण होती आयी है। इसी कारण से हमारे भारत को करीब छः या सात शताब्दियो तक मुसल्मान तथा ब्रिटिशो के अधीन में रहना पडा। करीब डेढ शताब्दी के पहले जब मेकाली ने नूतन विद्याविधान से हमारी सस्कृति पर तीव्र प्रहार किया, तब से अंग्रेजी विद्याविधान ही भारतीयो के जीवनयापन केलिए एकमात्र आधार बन गया। इस तरह वैदिक पण्डितो का समूल नाश किया गया। इतना ही नहीं आजकल वेदविद्या को प्राप्त करनेवाले एक ब्राह्मण युवक का विवाह होना बहुत मुश्किल हो रहा है।

अतएव आजकल की इन परिस्थितियो में यह हमारा पवित्र कर्तव्य है कि आधुनिकता के मोह में न पडकर परिस्थिति को जानकर हमारे पारंपरिक वैदिक सस्कृति का परिरक्षण करें। इस सत्य को हमें मानना ही पडेगा कि छात्रो केलिए हर वर्ष अनेक करोडो रुपये खर्च किये जाने पर भी भयकर बेकारी समस्या के साथ साथ वे छात्र बहुत सिर दर्द बन रहे है। हमारा आधुनिक विद्याविधान ही इसका कारण है। अतएव हमें अपनी वैदिक सस्कृति को भी अधिक प्रमुखता देकर उस को प्रोत्साहन करने की आवश्यकता है।

* * * *

इस अवसर पर हम ने एक वेदरक्षण तथा एक कुमार-अध्ययन योजना का प्रारभ किया जो भगवान बालाजी की आमदनी से चलायी जायगी है। इस केलिए भगवान बालाजी के प्रति हमारे शतशत नमस्कार है। यह ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान बालाजी धन कमाकर वेदो का परिरक्षण कर रहे है जिन के द्वारा भगवान की महत्ता सब को विदित हो जाय। अतएव माननीय मत्रिवर ने हिन्दू धर्म के मूलाधार, उसके विकास तथा अन्य महत्तर विषयो पर खूब सोच विचार कर अमूल्य निर्णय किया कि भगवान बालाजी की आमदनी से १०% हिन्दू धर्म के लिए खर्च किया जाय। इस १०% में से वैदिक विद्या विधान का पुनरुद्धार, तथा शास्त्रों शिक्षा की प्रोत्साहन के लिए प्रमुखता दी जाय। यदि इनकी ओर ध्यान नहीं देंगे तो समझिए कि इनका नामावशेष वचना भी असंभव हो जाता है। एक बार हम इन्हें अपने हाथों से खो देंगे तो इन्हें हमेशा केलिए खो देने का मतलब है।
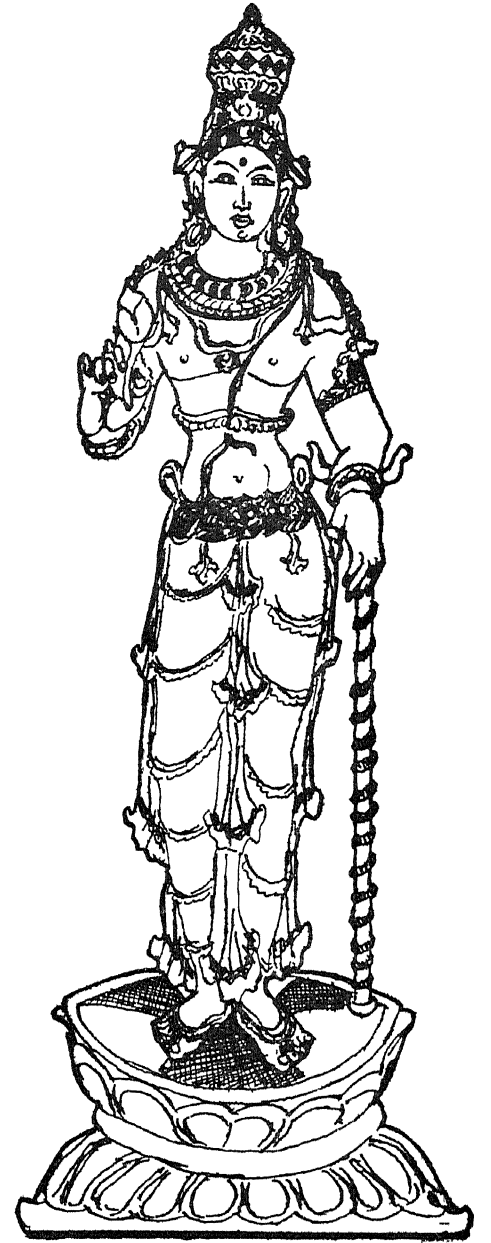
सुन्दरमूर्ति नायनार

फोटो : सी के. गोविन्दराव, तिरुपति.

यह बात विदित ही है कि अनेक पाश्चात्य युवक हमारे हिन्दू धर्म के प्रति रुचि दिखा रहे हैं। मै ने सुना कि नैदरलाण्ड, हालेंड, डेन्मार्क इत्यादि देशो के युवक भी वेदो शोधन करके 'डाक्टरेट्स' प्राप्त कर रहे हैं। इस से विदित होता है कि वैदिक सस्कृति का मूलकेन्द्र भारत को छोडकर जितना दूर चला गया है। ऐसी परिस्थिति में बचे कुछे हमारे वैदिक पण्डितों को अपनी जीविका चलाने लोगों की दया पर आधारित होने की हीनस्थिति है हमारे देश में। अतएव इस दुरवस्था को दूर कर वेद तथा शास्त्रों के पुनरुद्धार केलिए आज हमें यह मार्ग दिखाई दिया है।

मासिक राशिफल

जनवरी १९७९

*डा० डी. अर्कसोमयाजी, तिरुपति.

मेष

(अश्विनी, भरणी, कृत्तिका केवल पाद-१)

राहु से भय। शनि से धन नष्ट, झगडे तथा सतान से विच्छेद। गुरु से मानसिक अशाति। शुक्र से धन लाभ, गृह प्राप्ति तथा प्रेम व्यवहार। सूर्य से महीने के पहले भाग मे अस्वस्थता, दूसरे भाग मे शुभ फल। कुज से १२ वी तारीख तक धन नष्ट, अस्वस्थता उस के बाद धन लाभ। बुध से पहले चार दिनो तक शुभ फल और उस के बाद २४ ता० तक अशुभ फल, बाकी दिनो मे शत्रुता पर विजय और प्रेम व्यवहार।

वृषभ

(कृत्तिका पाद-२, ३, ४, रोहिणी, मृगशिरा पाद-१,२)

राहु से झगडे। शनि से धन नष्ट अथवा सगे-सबधियो से विच्छेद। गुरु से भी मानसिक अशाति। शुक्र से स्त्रियो के द्वारा कष्ट। सूर्य से अस्वस्थता, या पत्नी का असतोष अथवा धन नष्ट वा सभी कार्यों मे विफलता। कुज से पहले चार दिनो तक झगडे, २४ वी ता० तक लाभ, या नूतन वस्त्र प्राप्ति, बाकी दिनो मे कष्ट तथा मानसिक अशाति।

मिथुन

(मृगशिरा पाद-३, ४, आर्द्रा, पुनर्वसु पाद-१,२,३)

राहु से धन प्राप्ति। शनि से भी धन, वाहन प्राप्ति, स्वास्थ्य लाभ और घरेलू सतोष। गुरु से धन तथा विजय। शुक्र से अस्वस्थता। सूर्य से महीने के पहले भाग मे प्रयाण तथा प्रयास और दूसरे भाग मे अस्वस्थता। कुज के कारण पत्नी से झगडे या नेत्र अथवा उदर पीडा या धन नष्ट। बुध से ४ दिनो तक विजय, ता० २४ तक झगडे और बाकी दिनो मे विजय, धन तथा नूतन वस्त्र प्राप्ति।

कर्काटक

(पुनर्वसु पाद-४, पुष्य तथा आश्लेष)

राहु तथा शनि से धन नष्ट। गुरु से भी धन नष्ट तथा झगडे। शुक्र से धन तथा मित्र प्राप्ति, बडो के द्वारा प्रशसा। कुज से ता० १२ तक धन प्राप्ति विजय, गृहोपकरणो की प्राप्ति और बाकी दिनो मे पत्नी से झगडे अथवा नेत्र या उदर पीडा। बुध से पहले चार दिनो तक घरेलू झगडे, २४ तक विजय या पदोन्नति और और बाकी दिनो मे फिर झगडे। सूर्य से महीने के पूर्वार्द्ध मे स्वास्थ्य लाभ, शत्रुओ पर विजय और दूसरे भाग मे प्रयाण तथा उदर पीडा।

सिंह

(उत्तर फल्गुनि पाद-१, मख, पूर्व फल्गुनि)

राहु से भय। शनि के द्वारा सगे-सबधियो से विच्छेद, प्रयाण, प्रयास, धन नष्ट अथवा अधार्मिक व्यवहार। गुरु से भी प्रयाण और प्रयास। शुक्र से मित्र प्राप्ति। कुज से १२ तक अस्वस्थता, या सतान, शत्रु अथवा अपने बुरे-व्यवहार से भय, बाकी दिनो में धन प्राप्ति और सब विषयो मे विजय। सूर्य से महीने के पहले भाग मे शत्रुओ द्वारा भय, और दूसरे भाग मे स्वास्थ्य लाभ तथा शत्रुओ पर विजय। बुध से ४ तक धन लाभ, ४ से २४ तक घरेलू झगडे और बाकी दिनो मे विजय और पदोन्नति।

कन्या

(उत्तरा पाद-२,३,४, हस्त, चित्त पाद-१, २)

राहु से धन नष्ट। शनि से भय। शुक्र से धन, गौरव, नूतन वस्त्र तथा विजय प्राप्ति। कुज से १२ तक अस्वस्थता, दुष्ट जनो से हानि, बाकी दिनो मे सतान के कारण भय, या अस्वस्थता, शत्रुवृद्धि। सूर्य से अस्वस्थता, शत्रुओ से कष्ट। बुध से ४ तक अपने बुरे चरित्र के कारण भय, ४ से २४ तक गृह सबधी समस्याए, बाकी दिनो मे घरेलू झगडे।

तुला

(चित्त पाद-३, ४, स्वाति, विशाख पाद-१, २, ३)

राहु से सतोष। शनि से धन तथा प्रेम-व्यवहार। गुरु से धन नष्ट और मानसिक अशाति। शुक्र से धन प्राप्ति खाद्यान्न, तथा गौरव प्राप्ति। सूर्य से महीने के पूर्व भाग मे धन प्राप्ति, गौरव, शत्रुओ पर विजय और दूसरे भाग मे अस्वस्थता। कुज से १२ तक सतान से धन-प्राप्ति और उस के बाद अस्वस्थता, उदर पीडा और दुष्ट लोगो से हानि। बुध से २४ तक अपने बुरे व्यवहार से भय और बाद मे घरेलू समस्याए।

वृश्चिक

(विशाख पाद-४, अनुराधा, ज्येष्ठ)

राहु से झगडे। शनि से धन-नष्ट अथवा गौरव हानि। गुरु से धन और खाद्यान्न प्राप्ति

नया विजय। शुक्र से १२ तक प्रेम व्यवहार, आधिकारिक भय, शत्रुओं से भय, अस्वस्थता और संतान से धन प्राप्ति। सूर्य से महीने के पहले भाग में धन नष्ट, नेत्र पीडा और दूसरे भाग में धन या गौरव प्राप्ति। बुध से ४ तक धन नष्ट, ४ से २४ तक मानसिक अशांति, और बाकी दिनों में अपने व्यवहार के कारण भय।

धनु:
(मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ पाद-१)

राहु से अधार्मिक व्यवहार। शनि से झगडे या अस्वस्थता या अधार्मिक व्यवहार। गुरु से अस्वस्थता या प्रयाण तथा प्रयास। शुक्र से धन-प्राप्ति और उसका दुरुपयोग। सूर्य से महीने के पहले भाग में अस्वस्थता, धन-नष्ट और दूसरे भाग में नेत्र पीडा, धन नष्ट अथवा धोखा खाना। कुज से आधिकारिक भय या अस्वस्थता। बुध से मानसिक अशांति अथवा बुरे उपदेश से धन नष्ट।

मकर
(उत्तराषाढ पाद-२, ३, ४ श्रवण, धनिष्ठ पाद-१, २)

राहु से भय। शनि के कारण सगे संबंधियों में विच्छेद। गुरु से धन प्राप्ति, प्रेम व्यवहार। शुक्र से भी धन, नूतन वस्त्र तथा मित्र प्राप्ति। सूर्य से महीने के पहले भाग में शुभ फल और दूसरे भाग में प्रयाण, उदर-पीडा अथवा धन नष्ट। कुज से धन नष्ट या भय। बुध से ४ तक मित्र प्राप्ति तथा प्रेम व्यवहार, ४ से २४ तक अस्वस्थता और उस के बाद झगडों के कारण धन नष्ट या बुरे उपदेश।

कुंभ
(धनिष्ठ पाद-३, ४, शतभिष, पूर्वाभाद्रा पाद-१, २, ३)

राहु से झगडे। शनि से प्रयाण। गुरु से मानसिक अशांति। शुक्र से झगडे, मानसिक व्यथा। सूर्य से महीने के पहले भाग में धन प्राप्ति। विजय और दूसरे भाग में विपरीत फल। कुज से १२ तक विजय तथा संतोष, उसके बाद धन नष्ट और भय। बुध से २४ तक धन प्राप्ति, विजय, प्रेम व्यवहार या वाहन प्राप्ति, बाद में अस्वस्थता।

मीन
(पूर्वाभाद्र पाद-४, उत्तराभाद्र, रेवती)

राहु से धन प्राप्ति। शनि से स्वास्थ्य लाभ तथा विजय। गुरु और शुक्र से, धन तथा नूतन वस्त्र प्राप्ति और प्रेम व्यवहार। सूर्य से भी विजय, धन प्राप्ति तथा स्वास्थ्य लाभ। कुज से भी धन तथा विजय प्राप्ति। बुध से ४ तक मानसिक अशांति और उसके बाद प्रेम व्यवहार अथवा वाहन प्राप्ति।

ति. ति. दे. के न्यास मण्डल के प्रमुख निर्णय

देवस्थान ने बुग्गमठ से संबंधित खाली जगह को देवस्थान के कर्मचारियों को गृह-बनाकर देनेवाले एस. वी. टी टी डी. कर्मचारियों के सहकार गृह निर्माण संस्था को दे देने का निर्णय किया।

तिरुपति में लड़कों केलिए और एक जूनियर कालेज की स्थापना कराने का निर्णय लिया गया।

तिरुपति के निकट स्थित मुत्यालरेड्डी पल्ली में एक कल्याण मण्डप के निर्माण कराने का निर्णय लिया गया,

१९७८–७९ वर्ष केलिए आन्ध्र प्रदेश के देवादाय शाखा से प्रकाशित 'आराधना' मासिक पत्रिका केलिए रु २०००/– दान देने का निर्णय लिया गया।

तिरुचानूर ग्राम पंचायत को १९७८-७९ वर्ष केलिए रु २५,००० मंजूर करने का निर्णय लिया गया।

तिरुपति में तीसरी धर्मशाला के पास निर्मित होनेवाले रेसिडेन्शियल क्वार्टर्स के लिए रु ७१,००० मंजूर करने का निर्णय लिया गया।

देवस्थान कर्मचारियों के सांस्कृतिक कार्य कलापों केलिए रु. ५,००० मंजूर करने का निर्णय लिया गया।

श्रीकाकुलम जिला स्थित नगरम् पल्ली के हरिजनवाडा में रु १०,००० की लागत से एक राममन्दिर के निर्माण करवाने का निर्णय लिया गया।

देवस्थान के सीनियर मेडिकल अफीसर श्री ए. बी. रामचन्द्रा रेड्डी के निधन के प्रति देवस्थान न्यास मण्डल के सदस्यों ने तीव्र संताप प्रकट किया तथा श्री रेड्डी जी के परिवार के प्रति सहानुभूति प्रकट की।

EDITED AND PUBLISHED ON BEHALF OF THE T. T. DEVASTHANAMS BY K. SUBBA RAO, M.A. AND PRINTED AT T T. D. Press, By M. Vijayakumar Reddy, Manager, T. T. D Press, Tirupati.

ति. ति. देवस्थान के विविध - मन्दिरों में अर्जित सेवाओं की दरें तथा कुछ नियम निम्नलिखित रूप से परिवर्तित की गयीं।

श्री पद्मावती देवी का मन्दिर, तिरुचानूर.

अर्चना	रु १–००
आरती	रु ०–५०

श्री गोविन्दराज स्वामी मन्दिर, तिरुपति.

तोमाल सेवा	रु ४–००	(एक टिकट)
अर्चना	रु ४–००	,,
एकांतसेवा	रु ४–००	,,
विशेष दर्शन	रु २–००	,,

श्री बालाजी का मन्दिर, तिरुमल.

तिरुमल पर विराजमान श्री बालाजी के मन्दिर में अब तक रु २००/- चुकाकर मनानेवाली आर्जित सेवा में भाग लेने केलिए ६ व्यक्तियों को प्रवेश है। अब से केवल ५ व्यक्तियों को ही प्रवेश दे देने का निर्णय लिया गया।

ति. ति. देवस्थान, तिरुपति.

रजिष्टर नं. एच/टी आर पी/११

तिरुपति में विराजमान श्री गोविन्दराज स्वामी जी का प्लवोत्सव

ता० ७-२-७९ से ११-२-७९ तक